वर्ष ४२] * * * [अङ्क ५

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर ज्येष्ठ २०२५, मई १९६८

१–एकार्णवमें वटवृक्षपर बाल भगवान् [कविता] ··· ··· ८९३

२–कल्याण ('शिव') ··· ··· ८९४

३–ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश (संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीचरणोंकी रज शालिगराम) ··· ··· ८९५

४–भक्तिसाधनाका मनोविज्ञान (मूल लेखक—श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती; अनुवादक—अनन्तश्री स्वामीजी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज) ··· ८९८

५–अहंग्रह-उपासनाका महत्त्व (श्री-भृगुनन्दनजी मिश्र) ··· ··· ९०३

६–सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृति-तीर्थ) ९०४

७–दर्शनसे अतृप्ति [कविता] (श्रीकृष्णदासजी) ··· ··· ९०६

८–लोकैषणाकी छातीपर (प्रो० श्रीबाँके-बिहारीजी झा 'करील' एम्० ए०, साहित्याचार्य) ··· ··· ९०७

९–श्यामका स्वभाव—३ (ठा० श्रीसुदर्शन-सिंहजी) ··· ··· ९११

१०–लिखा-पढ़ा कौन है ? (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ··· ··· ९१४

११–मधुर ··· ··· ९१५

१२–भगवान्‌के हाथ ! (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी) ··· ९१६

१३–श्रीमद्भैरवोपासना (डॉ० श्रीभवानीदासजी मेहरा) ··· ··· ९१९

१४–अर्चनोपासनामें धूपविधि (श्रीपृथ्वीराज मालेराव) ··· ··· ९२७

१५–चरित्र-संकट (Character Crisis) (श्रीरामनिरीक्षणसिंहजी, एम्० ए०, काव्यतीर्थ) ··· ··· ९३०

१६–मानव-चरित्रके निर्माणमें धर्म-समन्वित शिक्षाका महत्त्व ··· ··· ९३२

१७–अपने गाँवके चमारकी बेटीके विवाहमें ब्राह्मणोंका भात भरना (भक्त श्री-रामशरणदासजी पिलखुवा) ··· ९३५

१८–मांस-त्याग और अहिंसासे ही सुख-समृद्धि और श्रेष्ठ स्वास्थ्यकी वृद्धि (वैद्य श्रीप्रकाशचन्दजी पांड्या) ··· ९३८

१९–एक कँटीले पेड़की कहानी (श्रीमती रेवा दास) ··· ··· ९४१

२०–स्वप्नदर्शन (श्रीगोविन्दजी शास्त्री, एम्० ए०) ··· ··· ९४२

२१–श्री आर० डी० रानडे और उनकी उपासना ··· ··· ९४५

२२–सज्जन और दुर्जन (एक दृष्टि) (श्रीदिनेशदत्तजी त्रिपाठी) ··· ९४७

२३–कामके पत्र ··· ··· ९४९

२४–हो गया 'स्वराज्य' अब 'सुराज' चाहिये [कविता] (स्वर्गीय विद्यावाचस्पति डा० श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्०) ९५२

२५–पढ़ो, समझो और करो ··· ··· ९५३

चित्र-सूची

१–सीता-परित्याग (रेखाचित्र) ··· मुखपृष्ठ

२–एकार्णवमें वटवृक्षपर बाल भगवान् (तिरंगा) ··· ८९३

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग) } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ { साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
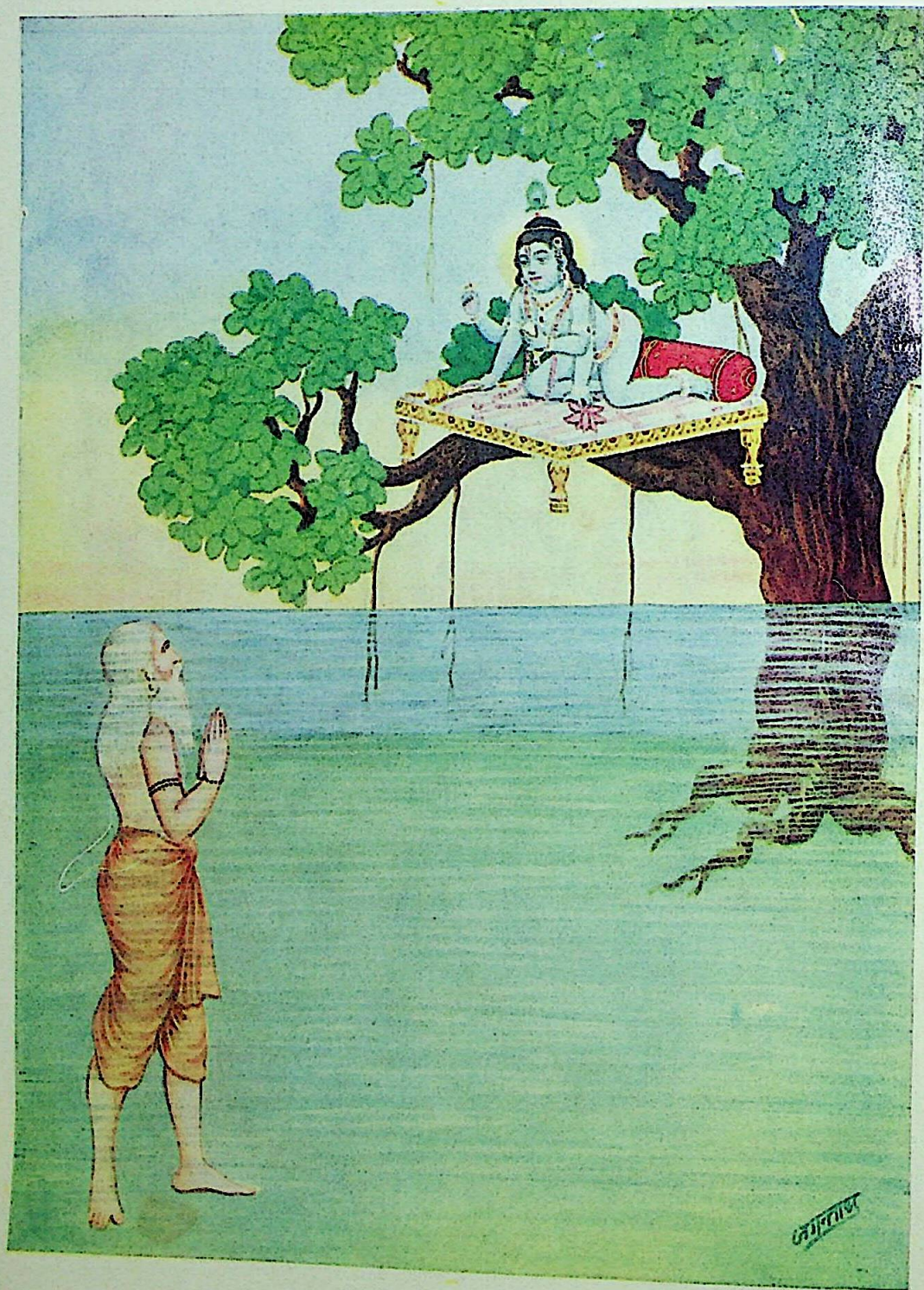
एकार्णवमें वटवृक्षपर बाल भगवान्

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण
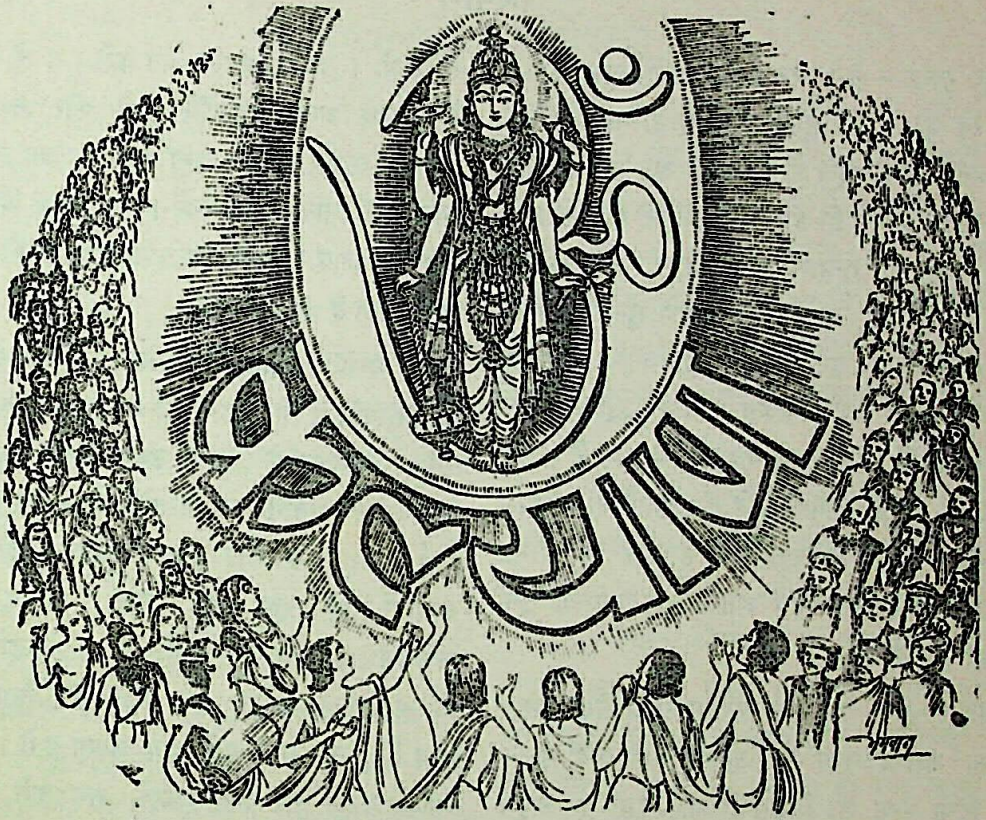
त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

वर्ष ४२ } गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ २०२५, मई १९६८ { संख्या ५
पूर्ण संख्या ४९८

एकार्णवमें वटवृक्षपर बाल भगवान्

एकार्णवकी उस अगाध जलराशि-बीच वटवृक्ष विशाल,
दीख पड़ा उसकी शाखापर बिछा पलंग एक तत्काल ।
उसपर रहा विराज एक था कमलनेत्र अति सुन्दर बाल,
देख प्रफुल्ल कमल मुख मुनि मार्कण्डेय हो गये चकित, निहाल ॥

कल्याण

याद रक्खो—तुम जिन प्राणि-पदार्थोंमें सुख, शान्ति खोज रहे हो, उनमें सुख-शान्ति हैं ही नहीं; वे स्वयं अभावग्रस्त तथा अपूर्ण हैं। उनकी अप्राप्तिमें तो तुम सुख-शान्तिसे वञ्चित हो ही; उनकी जितनी ही तुम्हें प्राप्ति होगी उतनी ही तुम्हारी अभावग्रस्तता तथा अपूर्णता बढ़ेगी और फलतः उतनी ही मात्रामें सुख-शान्ति भी तुम्हारे जीवनसे दूर हट जायँगे। सुख-शान्ति तो वहीं हैं जहाँ पूर्णता तथा नित्यता है तथा जहाँ अभावका सर्वथा अभाव है। ऐसी वस्तु एकमात्र भगवान् हैं। उन भगवान्को पानेका प्रयत्न करे। उनके बिना संसारमें अभाव-ही-अभाव है। उनके मिलते ही सारे अभाव नष्ट हो जायँगे और नित्य सत्य अनन्त सुख-शान्तिकी तुम्हें प्राप्ति हो जायगी।

याद रक्खो—उन पूर्ण परमात्माकी प्राप्ति ही तुम्हारे जीवनका असली लक्ष्य है। उसीके लिये तुम्हें मानव-जीवन दिया गया है, जिसमें विवेकके द्वारा तुम अपूर्ण अभावग्रस्त प्राणि-पदार्थोंका मोह त्याग करके परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें लग जाओ और परमात्माको प्राप्त करके जीवनको सफल बना लो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम मानव-जीवनके लक्ष्यसे च्युत होकर ऐसे-ऐसे कर्मोंका आचरण करोगे, जिनका फल मानव-जीवनकी असफलता तो होगा ही, तुम्हारा भविष्य बिगड़ेगा। तुम आसुरी योनियोंको तथा अन्धतम नरकोंको प्राप्त करके दुखी हो जाओगे।

याद रक्खो—मानव-शरीरके श्वास पहलेसे निर्धारित हैं, श्वास पूरे हुए कि शरीर छूटा और श्वास अनवरत चल ही रहे हैं। अतएव असली लक्ष्यकी प्राप्तिमें शीघ्र लग जाओ। प्रमाद-आलस्य मत करो। न तो न करने योग्य व्यर्थ अनर्थके कार्योंमें लगो और न लक्ष्यके साधनको कलपर छोड़ो। अभी इसी क्षण लग जाओ पूरे मनसे लक्ष्य-प्राप्तिकी साधनामें। पता नहीं, किस क्षण मृत्यु आ जाय। उसके पहले-पहले ही अपने लक्ष्यपर पहुँच जाना है।

याद रक्खो—यहाँकी कोई भी वस्तु, कोई भी प्राणी, कोई भी परिस्थिति न तो तुम्हारी है, न तुम्हारा उनसे कोई आत्मिक सम्बन्ध है और न उनके मिलने-बिछुड़ने या आने-जानेमें तुम्हारा यथार्थमें कोई लाभ-हानि ही है। व्यर्थ ही तुम ममताका सम्बन्ध जोड़कर दुःख तथा बन्धनमें पड़े हुए हो तथा राग-द्वेष करके नये-नये पाप करते रहते हो। तुम्हारे अपने तो एकमात्र परमात्मा ही हैं, जो नित्य तुम्हारे साथ हैं। उन परमात्मामें पूर्ण ममता करो। जगत्के प्राणि-पदार्थोंमें न ममता करके राग करो, न उन्हें पराया समझकर द्वेष करो। उनकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें सम रहो तथा सब समय सभी स्थितियोंमें समभावसे उन सबमें परमात्माको देखकर परमात्माके भावमें निमग्न रहो।

याद रक्खो—अखण्ड दिव्य नित्य आत्यन्तिक आनन्द एकमात्र परमात्मामें ही है, वह उनका स्वरूप ही है। जब तुम्हें सारे जगत्में सर्वत्र सदा परमात्मा दिखायी देंगे तो जगत् भी सर्वथा सर्वदा तुम्हारे लिये आनन्दस्वरूप हो जायगा और तुम भी आनन्दस्वरूप हो जाओगे। पर जबतक जगत्में परमात्माको नहीं देख पाओगे, तबतक तो जगत् 'दुःखालय' और 'दुःखयोनि' ही रहेगा।

'शिव'

ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

'गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने मानसमें भगवन्नाम-महिमाका वर्णन करते हुए यहाँतक कहा है कि कलियुगमें केवल भगवान्‌के नामका ही आधार है। गणिका और अजामिल-सदृश बड़े-से-बड़े पापी केवल नामके प्रभावसे सहजमें ही मुक्त हो गये। श्रीहनुमान्‌जीने इसी नामके प्रभावसे भगवान् श्रीरामको अपने वशमें कर रक्खा है। नामको जीभपर रखने मात्रसे बाहर और भीतर प्रकाश छा जाता है। नामकी महिमा इतनी अधिक है कि स्वयं भगवान् भी उसका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं—

राम न सकहिं नाम गुन गाई ॥

यहाँतक कि भगवान् शिव इस नामकी शक्तिसे ही काशीमें समस्त जीवोंको मुक्ति प्रदान किया करते हैं। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत, महाभारत आदि अन्य शास्त्र भी नाम-महिमासे भरे पड़े हैं; परंतु क्या कारण है कि इसके अनुसार नामका प्रत्यक्ष परिणाम देखनेमें नहीं आता ?'

'इस प्रकारके तर्क उपस्थित करते हुए कई महानुभाव प्रश्न किया करते हैं। इन सबका उत्तर यह है कि प्रत्यक्ष फल न दीखनेका कारण भगवान्‌के नाममें श्रद्धाकी कमी है। वस्तुतः भगवन्नामकी जो महिमा शास्त्रोंने गायी है, वह उससे कहीं अधिक है। नाम-महिमाकी कोई सीमा ही नहीं है। शास्त्रकथित महिमा तो नामसे लाभ प्राप्त किये हुए महात्माओंके उद्गारमात्र हैं। जिस प्रकार ईश्वर और सत्संगकी जितनी महिमा कही जाय, उतनी ही थोड़ी है। उसी प्रकार नामकी महिमाका जितना वर्णन हो, उतना ही थोड़ा है। असलमें भगवन्नामके तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभाव आदि न जाननेके कारण ही उसके प्रति श्रद्धामें कमी है। श्रद्धाके अभावसे तथा कहीं-कहीं तो श्रद्धासे सर्वथा विपरीत अश्रद्धाके कारण मनुष्यको यथार्थ लाभसे वञ्चित रहना पड़ता है। नामकी तो अमित महिमा है। संसारके किसी भी पदार्थके साथ भगवन्नामकी तुलना नहीं हो सकती। यहाँके जड एवं नाशवान् पदार्थोंको लेकर भगवान्‌के नामको तौलने बैठना तो अपनी अज्ञताका ही परिचय देना है।'

× × ×

'....किसी भी सांसारिक पदार्थके साथ भगवान्‌के नामकी तुलना करना सर्वथा अनुचित है।

× × ×

जिस प्रकार पारसको न पहचाननेवाला व्यक्ति उससे तुच्छ पदार्थ लेकर सदा कंगाल बना रहता है, उसी प्रकार राम-नामके महत्त्वको न जाननेवाला भी प्रेम और भक्तिकी दृष्टिसे सदैव दरिद्र ही बना रहता है।

× × ×

जिस नामके प्रभावसे भयंकर भवरोग मिट जाता है, उसे मामूली रोगनाशके लिये उपयोगमें लाना सर्वथा अज्ञता है।

× × ×

....जो मनुष्य भगवन्नामके प्रभावको नहीं जानते, वे उसे स्त्री, पुत्र, धन आदिके बदलेमें बेच डालते हैं।

× × ×

जब सबका भरण-पोषण करनेवाले विश्वम्भर भगवान् सर्वत्र सब समय मौजूद हैं, तब अपनी जीविकाकी चिन्ता करना तो निरा बालकपन है।

× × ×

हमलोगोंको तो बस, अपने भगवान्‌पर ही निर्भर रहना चाहिये। वे ब्रह्मासे लेकर क्षुद्रातिक्षुद्र जीव-

परमाणु तक सभीका भरण-पोषण करते हैं । फिर जो उनके भरोसे रहकर नित्य-निरन्तर उन्हींका स्मरण-चिन्तन करता है, उसका योगक्षेम चलानेके लिये तो वे वचनबद्ध ही हैं । हमलोगोंको तो नित्य गीताका अध्ययनाध्यापन और निरन्तर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान्‌का भजन-स्मरण ही करना चाहिये ।'

× × ×

जो कोई भी भगवान्‌पर निर्भर हो जाता है, भगवान् सब प्रकारसे उसका योगक्षेम वहन करते हैं । जैसे बालक माता-पितापर निर्भर होकर निश्चिन्त विचरता है और माता-पिता ही सब प्रकारसे उसका पालन-पोषण करते हैं, उसी प्रकार, नहीं-नहीं उससे भी बढ़कर, भगवान् अपने आश्रितका पालन-पोषण और संरक्षण करते हैं । यही क्या, वे तो अपने आपको ही उसके समर्पण कर देते हैं । अतः तुमलोगोंको—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
(गीता ९ । २२)

—इस श्लोकमें कहे हुए भगवान्‌के वचनपर विश्वास करके नित्य-निरन्तर भगवान्‌का ही चिन्तन करना चाहिये तथा अर्थ और भावको समझकर नित्य श्रीगीताका अध्ययना-ध्यापन करना चाहिये ।

× × ×

सबसे उत्तम बात तो यह है कि नित्य-निरन्तर भगवान्‌का निष्कामभावसे चिन्तन करना चाहिये । योगक्षेमकी भी इच्छा न करके भगवान्‌में केवल अहैतुक विशुद्ध प्रेम हो, इसीके लिये प्रयत्न करना चाहिये । किंतु यदि योगक्षेमकी ही इच्छा हो तो सच्चे—पारमार्थिक योगक्षेमकी इच्छा करनी चाहिये । अप्राप्तकी प्राप्तिका नाम 'योग' है और प्राप्तकी रक्षाका नाम 'क्षेम' है । पारमार्थिक योगक्षेमका अभिप्राय यह है कि परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें जहाँतक हम आगे बढ़ चुके हैं, उस प्राप्त साधन-सम्पत्तिकी तो भगवान् रक्षा करते हैं और भगवान्‌की प्राप्तिमें जो कुछ कमी है, उसकी भी पूर्ति भगवान् कर देते हैं । ऐसा भगवान्‌ने आश्वासन दिया है । इस प्रकार समझकर और इसपर विश्वास करके भगवान्‌पर निर्भर एवं निर्भय हो जायँ; भगवच्चिन्तनके सिवा और कुछ भी चिन्ता न करें ।

× × ×

जो लोग सांसारिक योगक्षेमके लिये भगवान्‌को भजते हैं, वे भी न भजनेवालोंकी अपेक्षा बहुत उत्तम हैं; क्योंकि भगवान्‌ने अर्थार्थी, आर्त आदि भक्तोंको भी उदार—श्रेष्ठ बतलाया है—

'उदाराः सर्व एवैते' (गीता ७ । १८)

—और ज्ञानी निष्काम अनन्य भक्तको तो अपना स्वरूप ही बतलाया है; क्योंकि उस निष्कामी ज्ञानीको एक भगवान्‌के सिवा अन्य कोई गति है ही नहीं ।

अतः हमको उचित है कि हम भगवान्‌के निष्काम ज्ञानी अनन्य भक्त बनें; क्योंकि ऐसा भक्त भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है । भगवान्‌ने कहा है—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥
(गीता ७ । १७)

'उन भक्तोंमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य-प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है; क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है ।'

× × ×

अहंकार, ममता, आसक्ति और स्वार्थको त्यागकर श्रद्धा, भक्ति और विनयपूर्वक निष्कामभावसे भगवान्‌के दासानुदासके सङ्ग और सेवा करते हुए भगवान्‌की आज्ञाका पालन करें तथा मुक्तिकी भी इच्छा न रखकर

निष्काम प्रेमभावसे भगवान्‌के नित्य समीप रहकर भगवान्‌का निरन्तर स्मरण रखते हुए ही सेवा करनेका आग्रह रक्खें ।

× × ×

वस्तुतः सच्चे सुहृद् वे ही हैं, जो अपने प्रिय सम्बन्धीकी परमात्माको प्राप्त करनेमें सहायता करते हैं ।

× × ×

संसारमें क्रियाकी अपेक्षा भाव ही प्रधान है । छोटी-से-छोटी क्रिया भी भावकी प्रधानतासे मुक्तितक दे सकती है और उत्तम-से-उत्तम क्रिया भी निम्नश्रेणीका भाव होनेपर नरकमें ले जाती है । जैसे कोई मनुष्य जप, तप, ध्यान, स्तुति, प्रार्थना, पूजा, पाठ, यज्ञ और अनुष्ठान आदि दूसरोंके अनिष्ट या विनाशके लिये करता है तो उसके फलस्वरूप कर्ताको नरककी प्राप्ति होती है । उपर्युक्त अनुष्ठान आदि क्रिया यद्यपि बहुत ही उत्तम है तथापि भाव तामसी होनेके कारण कर्ताकी अधोगति करनेवाली होती है । भगवान् कहते हैं—

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥
(गीता १४ । १८)

'तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमें स्थित तामस पुरुष अधोगतिको अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियोंको तथा नरकोंको प्राप्त होते हैं ।'

जब यही उत्तम क्रिया स्त्री, धन, पुत्र आदिकी प्राप्तिके लिये अथवा रोगनिवृत्तिके लिये की जाती है, तब राजसी भाव होनेके कारण उससे मध्यम गति प्राप्त होती है । सारांश यह कि जिस-जिस भावसे क्रिया की जाती है, उस-उसकी ही प्राप्ति होती है । उपर्युक्त उत्तम क्रिया ही जब कर्तव्य समझकर निष्काम प्रेमभावसे भगवदर्थ की जाती है, तब उसका फल अन्तःकरणकी शुद्धि होकर भगवान्‌की प्राप्ति होती है । इस प्रकार एक ही क्रिया भावके कारण उत्तम, मध्यम और अधम फल देनेवाली होती है । एक निम्नश्रेणीकी क्रिया है; किंतु भाव यदि उच्चकोटिका है तो वह भी मुक्ति प्रदान करनेवाली होती है । जैसे माता-पिता, गुरुजनोंके रूपमें बच्चोंका शिक्षण और पालन करना, उनके मल-मूत्रकी सफाई करना; डाक्टरके रूपमें चीर-फाड़ करना; सड़क आदिकी सफाई करना; जलानेके लिये लकड़ियोंका बोझ ढोना; वस्तुओंका न्याययुक्त क्रय-विक्रय करना; भृत्य तथा सेवाका काम करना—यहाँतक कि गंदगी मिटानेके लिये टट्टी-पेशाब साफ करना—इत्यादि जो निम्नश्रेणीकी क्रियाएँ हैं, ये सब भी कर्तव्य समझकर निष्काम प्रेमभावसे की जायँ तो इनके फलस्वरूप अन्तःकरणकी शुद्धि होकर परमात्माकी प्राप्तितक हो सकती है; और ये ही क्रियाएँ सकामभावसे की जायँ तो इनसे अर्थकी सिद्धि होती है ।'

× × ×

समस्त क्रियाओंमें भगवान्‌की भक्ति उत्तम है तथा उस भक्तिके साथ अनन्य प्रेमभावका समावेश होनेपर फिर भगवान्‌के मिलनेमें एक क्षणका भी विलम्ब नहीं होता ।

× × ×

सम्पूर्ण गीतापाठकी अपेक्षा अर्थ और भावसहित एक अध्यायका प्रतिदिन पाठ कर लेना उत्तम है, किंतु गीताके साँचेमें अपना जीवन ढाल लेना तो सबसे उत्तम है । गीतामें बहुत-से ऐसे भी श्लोक हैं, जिनमेंसे किसी एक श्लोकको अपने जीवनमें उतार लेनेसे कल्याण हो जाता है ।

× × ×

हमको यह सीखना चाहिये कि सबके साथ प्रेम और विनयसे युक्त त्याग तथा उदारताका बर्ताव करें । खान-पानादि व्यवहारमें पूर्ण समता रक्खें । इसका यह अर्थ नहीं कि विधर्मी और विजातीय पुरुषोंके साथ एक

पंक्तिमें बैठकर उन-जैसा ही निषिद्ध आहार करें। भाव इतना ही है कि विधर्मी और विजातीय कोई भी क्यों न हो, सबको यथायोग्य शास्त्रानुकूल आदर-सत्कारपूर्वक, विनय और प्रेमपूर्वक बिना किसी भेद-भावके वही भोजन करायें, जो अपने लिये बनाया गया हो और पहले उनको भोजन कराके फिर स्वयं भोजन करें। नीयत शुद्ध होनी चाहिये अर्थात् मनमें जरा भी वैषम्य नहीं होना चाहिये।'

× × ×

मनुष्यके द्वारा कैसा भी अपराध क्यों न बन जाय, ईश्वरके शरण होकर उसके अनुकूल प्रायश्चित्तादि उपाय करनेसे, बिना ही भोग किये उसके पाप क्षमा हो सकते हैं। प्रायश्चित्त आदि उपायोंसे भी फलभोगके समान ही पापोंका नाश हो जाता है; क्योंकि प्रायश्चित्त भी एक प्रकारसे भोग ही है।

× × ×

नाशवान् क्षणभङ्गुर पदार्थोंसे और विषयोंसे वैराग्य-पूर्वक मन-इन्द्रियोंको हटाकर परमात्मामें लगाना चाहिये।

× × ×

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीचरणोंकी रज शालिगराम)

भक्तिसाधनाका मनोविज्ञान

(मूल लेखक—श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती)

[अनुवादक—अनन्तश्री स्वामीजी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज]

[गताङ्क पृष्ठ ८३८ से आगे]

(तृतीय अमृतवृष्टि)

अब अनर्थोंकी निवृत्तिका निरूपण करते हैं। अनर्थ चार प्रकारके होते हैं—(१) पापजन्य, (२) पुण्यजन्य, (३) अपराधजन्य, (४) भक्तिजन्य। ईश्वरकी भजनीयताका अज्ञान, अहङ्कार, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँचों क्लेश 'पापजन्य' हैं। भोगमें अभिनिवेश 'पुण्यजन्य' है। नामापराधको ही मुख्यरूपसे 'अपराध' कहते हैं; क्योंकि सेवापराध तो प्रायः नामसे नित्य निवृत्त हो ही जाते हैं। सावधान न रहनेसे सेवापराध भी नामापराध हो जाता है। जैसा कि शास्त्रोंमें कहा है—'नामके बलका आश्रय लेकर जो अपराध करता है; सत्य, अहिंसा आदि यम और स्वयं यमराज भी उसे पवित्र नहीं कर सकते।' यहाँ 'नाम' शब्द-का अर्थ भक्ति है, जो अनर्थरूप रोगको शान्त करे वही 'नाम औषध' है। यह तो आप जानते ही हैं कि जो धर्मशास्त्रकी रीतिसे भी हम फिर प्रायश्चित्त कर लेंगे, इस अभिमानके वशीभूत होकर पाप करता है, प्रायश्चित्तके द्वारा उसकी शुद्धि नहीं होती; प्रत्युत पापोंकी गाढ़ता ही होती है।

भक्तिमार्गमें यात्रा कर देनेपर फिर किंचित् भी हानिकी आशङ्का नहीं है। 'दशाक्षर मन्त्रका केवल जप ही सिद्धि-दाता है।' इन वाक्योंके अतिशय विश्वासके कारण जो अनुष्ठानमें 'अङ्गवैगुण्य' आता है, उससे नामापराध नहीं होते; क्योंकि उसमें पाप करनेकी इच्छा नहीं होती। जिस त्रुटिकी निन्दा या प्रायश्चित्त नहीं है, वहाँ पाप भी नहीं है। भक्तिमार्गमें अङ्ग-शाकल्यसे अनुष्ठानमें साद्गुण्य आता है; किंतु अङ्ग-वैकल्यसे अपराध नहीं होता; क्योंकि यह मार्ग अविद्वान् अधिकारीके लिये भी है। इसमें नेत्रनिमीलन करके उल्लङ्घन करते हुए भी दौड़ा जा सकता है। इसमें प्रत्यवाय और पतन अर्थात् फलभ्रंश नहीं है; क्योंकि इस मार्गमें कहीं भी मान, मद, सिद्धि अथवा भगवद्वैमुख्यरूप अपराध नहीं है। इस मार्गमें केवल प्रभुका साम्मुख्य बना रहना चाहिये अर्थात् 'भगवद्-अपराध' नहीं करना चाहिये। निरन्तर नामजपसे सभी प्रकारकी अपराध-बाधाओंका उपशम हो जाता है।

प्रथम नामापराध है—संतोंकी निन्दा। निन्दासे सम्बद्ध द्वेष-द्रोह आदि भी लक्षणासे संगृहीत हैं। यदि यह अपराध हो जाय

तो पश्चात्तापपूर्वक संतोंके ही चरण पकड़कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। प्रणाम, स्तुति, सम्मान इसके उपाय हैं। आगसे जले स्थानको आगसे सेंककर ही चिकित्सा की जाती है। यदि कोई संत शीघ्र प्रसन्न न हों तो बहुत दिनोंतक उनकी रुचिके अनुसार सेवा करनी चाहिये। अपराध बड़ा होनेके कारण यदि वे उसपर प्रसन्न न हों तो वैराग्यपूर्वक सब कुछ छोड़कर नाम-संकीर्तनका आश्रय लेना चाहिये। नाम अमित शक्तिका भण्डार है। उसमें उद्धारका सम्भार है। परंतु यदि कोई यह सोचकर नामका आश्रय ले कि कौन बार-बार संतोंके चरणोंमें गिरने जाय तो यह भी नामापराध ही हो जाता है। यह भी नहीं सोचना चाहिये। जो कृपालु, रागद्वेष-रहित एवं तितिक्षु हैं, वही संत हैं और केवल उनकी निन्दा ही नामापराध है; क्योंकि जो 'भजे भगवन्त सो अन्तमें है संत'—इसलिये उसकी पहलेकी त्रुटिपूर्ण स्थितियोंमें भी निन्दा नहीं करनी चाहिये। उसकी निन्दा भी नामापराध ही है। यदि कोई संत भगवद्भावमें निमग्न होनेके कारण किसी अपराधीपर भी क्रोध नहीं करते तो यह उनकी विशेषता है। निन्दा करनेवालेको तो अपराध लगेगा ही। ऐसी स्थितिमें भी अपराधीको अपनी शुद्धिके लिये उन्हें प्रणाम-सेवा आदिसे सत्कृत करके क्षमा माँगनी ही चाहिये; क्योंकि भले ही वह संत क्रोध करके शाप न दे, परंतु उसके चरणोंकी धूलि असहिष्णु होती है और वह अपराधीका नाश कर देती है।

कोई-कोई महापुरुष ऐसे होते हैं जिनको पहचानना कठिन है। निष्कारण करुणाके अपार सागर हैं। वे निर्द्वन्द्व और स्वच्छन्द हैं। वे कब किसपर किस कारणसे अपनी राशि-राशि कृपा बिखेर देते हैं इसके सम्बन्धमें कोई मर्यादा नहीं है। जैसे जडभरत—शिविकामें वाहक बनानेवाले कटूक्ति-विषवर्षी रहूगणपर भी कृपा-वर्षा करते हैं। चेदिराज उपरिचर-वसुने पाखण्डधर्मावलम्बी दैत्यसमूहपर, जो कि उनकी हिंसा करनेके लिये आया हुआ था, महान् कृपा की। प्रभुवर नित्यानन्दने महापापी माधवपर, जिसने उनका सिर फोड़ दिया था, अत्यन्त कृपा बरस दी। गुरु-अवज्ञाके सम्बन्धमें भी संत-निन्दाके समान ही अपराधकी उत्पत्ति और निवृत्ति समझना चाहिये।

अब शिव, विष्णुके भेदके सम्बन्धमें विवेचन करना चाहिये; क्योंकि चैतन्य दो प्रकारका होता है—एक स्वतन्त्र, दूसरा अस्वतन्त्र। पहला सर्वव्यापी ईश्वर है, दूसरा देहमात्रमें शक्तिकी व्याप्तिवाला ईश्वराधीन जीव है। ईश्वर-चैतन्य भी दो प्रकारका है। पहला मायाके स्पर्शसे रहित, दूसरा लीलासे मायास्पर्शको स्वीकार करनेवाला। पहलेका नाम नारायण आदि है और दूसरेका नाम शिव आदि। 'हरिर्निर्गुणः शिवः शक्तियुतः।' शिवको गुणसंवृत होनेसे जीव नहीं समझना चाहिये। जैसे दूध ही दही होता है, वैसे निर्गुण गोविन्द ही सगुण शिव होते हैं। ब्रह्म भी वही है। काष्ठके प्रज्वलित एवं धूमयुक्त दशामें जैसे अग्नि है वैसे ही उसके पूर्व भी है। इन सब बातोंका विचार करके शिव-विष्णु आदिमें भेद-बुद्धि नहीं करनी चाहिये। जीवके भी अनेक भेद होते हैं। अविद्यासे आवृत और अनावृत, ऐश्वर्य शक्तिसे आविष्ट और अनाविष्ट। आविष्ट भी दो प्रकारके होते हैं। भगवान्‌के चिदंशज्ञानादिसे युक्त सनत्कुमारादि और मायांशभूत सृष्टि आदिसे आविष्ट ब्रह्मा आदि। इस प्रकार भी शिव-विष्णुका अभेद ही प्राप्त होता है; क्योंकि चैतन्य दोनोंमें ही एक रूप है। किसी-किसी महाकल्पमें जीव भी महाशिव हो जाता है। ऐसी स्थितिमें श्री, विष्णु, शिव, ब्रह्म एवं सूर्य आदिमें भेद मानकर अनन्यताके आवेशमें विवाद करनेका कोई कारण नहीं है। जो दूसरेकी निन्दा करके एकके प्रति अनन्य बनते हैं; उनको अभिज्ञ संतोंसे समझकर और नामसंकीर्तन करके इस नामापराधरूपी जड़ बुद्धिको उखाड़ फेंकना चाहिये। धर्मानुष्ठान करनेवालोंको बहिर्मुख और विवेचन-प्रधान जिज्ञासुजनोंको नास्तिक कहकर जो निन्दा की जाती है, वह श्रुति-शास्त्रकी ही निन्दा है और वह भी नामापराध ही है। इससे बचनेके लिये धर्मानुष्ठान करनेवालोंका अभिनन्दन और जिज्ञासुजनकी श्रुतिशास्त्रानु-वर्तिनी बुद्धिकी प्रशंसा करनी चाहिये और ऊँचे स्वरसे भगवन्नामका संकीर्तन करके अपनी वाणीका पाप धो डालना चाहिये; क्योंकि धर्म और ज्ञानका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियाँ भी स्वच्छन्दवर्ती रागान्ध अनधिकारियोंको भगवन्मार्ग-में अग्रसर करती हैं; यदि और परम कारुणिक संतोंके समझानेसे बुद्धिमें बैठ जाय तो उसे परम सौभाग्य समझना चाहिये; उससे नामापराधकी निवृत्ति हो जाती है। इसी प्रकार दूसरे अपराधोंकी उत्पत्ति एवं निवृत्तिके कारणों-को समझना चाहिये।

अब भक्तिजन्य अनर्थोंका विवेचन करते हैं। जब कोई वृक्ष लगाया जाता है तब उसके मूल तनेसे बहुत-सी छोटी-छोटी

टहनियाँ निकलती हैं। इससे वृक्ष शक्तिहीन—क्षीण हो जाता है और उपशाखाओंसे घिर जाता है। ऐसा देखनेमें आता है कि उन टहनियोंको यदि छाँट दिया जाय तो वह वृक्ष हरा-भरा एवं सम्पुष्ट हो जाता है। ठीक, इसी प्रकार जब मनुष्य भक्तिमार्गमें चलता है, तब भक्तिके कारण ही उसको पूजा, प्रतिष्ठा, लाभ, ख्याति, कीर्ति एवं यश आदिकी प्राप्ति होती है। ये छोटी-छोटी टहनियाँ अपने मूलकारण भक्तिको ही क्षीण कर देती हैं। इसलिये इन्हें 'भक्तिजन्य अनर्थ' कहा जाता है। भक्तिके साधकको इनसे सावधान रहना चाहिये।

इन चारों अनर्थोंकी निवृत्ति पाँच प्रकारकी होती है—एकदेशवर्तिनी, बहुदेशवर्तिनी, प्रायिकी, पूर्णा और आत्यन्तिकी। भजन-क्रियासे पहिली, निष्ठा हो जानेपर दूसरी, रति उत्पन्न होनेपर तीसरी, प्रेम होनेपर चौथी और भगवच्चरणारविन्दोंकी प्राप्ति होनेपर पाँचवीं अर्थात् अनर्थोंकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। चित्रकेतुके जीवनमें भगवत्प्राप्ति होनेपरभी शङ्कर भगवान्‌का अपराध देखनेमें आता है। परंतु वह वास्तविक नहीं, केवल प्रातीतिक है; क्योंकि वहाँ इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करना अभीष्ट है कि भगवत्प्राप्ति हो जानेपर शरीर चाहे पार्षदका रहे चाहे असुरका, इससे प्रेममें कोई अन्तर नहीं पड़ता। जय-विजयके जीवनमें जो महापुरुष सनकादिका अपराध देखनेमें आता है, उसका कारण उनकी समृद्ध प्रेमजन्य स्वच्छन्द स्वेच्छा ही है। उनकी इच्छाका स्वरूप यह है कि हे प्रभुवर! देवाधिदेव नारायण! हम जानते हैं कि आपके मनमें कभी-कभी युद्ध करनेकी इच्छा होती है, परंतु और सब तो अल्पबल हैं—आपसे युद्ध करने योग्य नहीं हैं और हमलोगोंमें आपके प्रति प्रतिकूलताका भाव नहीं है। ऐसी स्थितिमें आपकी इच्छा कैसे पूरी हो? इसलिये स्वामिन्! किसी भी प्रकारसे हम अनुकूलोंको ही थोड़ी देर प्रतिकूल बनाकर युद्धसुखका अनुभव कीजिये। हम आपकी परिपूर्णतामें अणुमात्र भी न्यूनता नहीं सह सकते। आप अपने भक्तवात्सल्यको भी लघु बनाकर हमारे प्रार्थना-हठको पूर्ण कीजिये। उनकी इसी इच्छाके वशीभूत होकर भगवान्‌ने उनसे सनकादिके प्रति अपराध निष्पन्न कराया और उन्हें असुरयोनिमें जाना पड़ा। वह तो भगवान्‌की विशेष सेवाके लिये ही उनके प्रेमका विलास है। दूसरे किसी भक्तके मनमें यदि इस प्रकारकी इच्छा जाग्रत् हो तो उसे अपने मनमें ही आनुकूल्यका संकल्प करके नष्ट कर देनी चाहिये।

प्रश्न यह है कि शास्त्रोंमें ऐसे शत-शत वचन प्राप्त होते हैं कि भगवन्नाम एक बार उच्चारणसे ही सम्पूर्ण पापराशिका नाश कर देता है और भगवन्नामके एक बार श्रवणसे कसाई भी संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार अजामिल आदिके उपाख्यानोंमें यह सिद्धान्त स्पष्ट किया गया है कि एक ही नामाभास अविद्यापर्यन्त निखिल अनर्थकी निवृत्ति करके भगवत्प्राप्तिका हेतु बनता है। ऐसी स्थितिमें भगवद्भक्तिके अपराध आदि क्रमसे निवृत्त होते हैं—यह कहना संगत नहीं मालूम पड़ता। ठीक है, नामकी ऐसी ही शक्ति है—इसमें संदेह नहीं। परंतु अपराधियोंपर अप्रसन्न होनेके कारण वह अपनी शक्ति भलीभाँति प्रकाशित नहीं करता। इसीसे अनर्थोंको जीवन मिलता रहता है; परंतु नामोच्चारण करनेवालेपर यमराजके दूत आक्रमण नहीं कर सकते।

श्रीमद्भागवतमें कहा है—

'न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्स्वप्नेऽपिपश्यन्ति।'
'न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः॥'

इस नामापराधके प्रसंगमें जो 'यम' शब्दका प्रयोग है वह योगाङ्गका वाचक है। यमदूतोंका नहीं। जैसे कोई समर्थ-सम्पन्न स्वामी अपने अपराधी स्वजनका पालन न करे, उससे उदासीन हो जाय तो बेचारेपर दुःख-दारिद्र्य, मालिन्य-शोक आदिका पहाड़ टूट पड़ता है, परंतु दूसरा कोई उसके ऊपर अँगुली उठानेका साहस नहीं कर सकता। परंतु यदि वह स्वजन फिर अपने स्वामीकी प्रेमपूर्ण सेवा करे, उसके मनको रुचनेवाले काम करे तो धीरे-धीरे वह प्रसन्न हो जाता है और सारे दोष अपने आप ही भाग जाते हैं। ठीक इसी प्रकार साधक यदि भगवद्भक्त, शास्त्र, गुरु आदिकी निष्कपटभावसे बार-बार सेवा करे तो उसके ऊपर नाम-स्वामी प्रसन्न हो जाते हैं और उसके सभी दुःखोंका नाश हो जाता है, इस सम्बन्धमें कोई विवाद नहीं है।

मेरा कोई नामापराध नहीं है, ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये; क्योंकि बहुत नामकीर्तन करनेपर भी जीवनमें प्रेमके चिह्न उदय होते हैं, तो अवश्य ही पूर्वजन्मके या इस जन्मके फल-बल-कल्प्य अपराधका अनुमान नहीं होता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि भगवन्नामका उच्चारण करनेपर भी नेत्रमें आँसू, शरीरमें पुलकावलि, हृदयमें द्रवता न आये तो वह हृदय अत्यन्त कठोर फौलादका बना

हुआ है। भक्तिरसामृतसिन्धुमें विवेचन किया गया है कि भगवान्‌के गुण, नाम आदिका श्रवण-कीर्तन करनेसे तत्काल प्रेमकी प्राप्ति होती है। चरणामृतके सेवनसे सद्यःसिद्धि मिलती है। भगवान्‌के प्रति निवेदित घृत-दुग्ध-ताम्बूल आदिके सेवनसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंके तरंग निवृत्त होते हैं; क्योंकि ये सब चिन्मय हैं। फिर भी जब ये प्राकृत पदार्थोंके समान ही हो जाते हैं, तब अवश्य ही किसी-न-किसी महान् अपराधके कारण ही ऐसा होता है।

अब प्रश्न यह है कि ऐसी परिस्थितिमें नामापराधी-पुरुष भगवान्‌से विमुख ही रहेगा, वह सद्गुरुके चरणका आश्रय अथवा भजन-क्रिया भी नहीं कर सकेगा। ठीक है, जब ज्वरका तीव्र वेग होता है, तब भोजन रुचता नहीं। उसके नामसे ही घृणा होती है, वैसे ही नामापराधकी तीव्रता और गाढ़तामें श्रवण-कीर्तनादिके प्रति रुचि नहीं होगी, इसमें क्या संदेह है? किंतु जब ज्वर मृदु और पुराना हो जाता है, तब भोजन जैसे कुछ-कुछ रुचने लगता है, वैसे ही अपराधका वेग मृदु और क्षीण होनेपर भगवद्भजनमें कुछ-कुछ रुचि होने लगती है। इसलिये मनुष्यमें भक्तिका अधिकार आ जाता है। जैसे ज्वरकी दशामें पौष्टिक भोजन भी सम्पूर्ण पुष्टि नहीं देता और यदि किंचित् देता भी है तो ग्लानि और कृशताकी निवृत्तिमें समर्थ नहीं होता। हाँ, यह अवश्य है कि पथ्य और ओषधिका सेवन समयपर स्वस्थ कर देता है। वैसे ही श्रवण-कीर्तनादि भजन-क्रिया भी क्रम-क्रमसे समयानुसार अपना फल प्रकट करती है। ठीक ही कहा है कि श्रद्धा, साधुसंगति, भजन-क्रिया, अनर्थ-निवृत्ति, निष्ठा और रुचि—इस क्रमसे भक्तकी उन्नति होती है। कुछ लोग तो ऐसा मानते हैं कि नाम-संकीर्तन आदि करनेवालोंके जीवनमें प्रेमके लक्षण ही प्रकट न होते हों—केवल इतनी ही बात नहीं है, उनके जीवनमें कभी-कभी पाप-प्रवृत्ति भी देखनेमें आती है और बार-बार व्यावहारिक दुःख देखनेके कारण उनके प्रारब्ध कर्मका प्रबल वेग भी सिद्ध होता है। इससे भयभीत नहीं होना चाहिये। अपनी भजन-क्रिया अबाधगतिसे करते रहना चाहिये। विष्णुभगवान्‌के पार्षदोंने अजामिलको निरपराध सिद्ध किया था; फिर भी देखनेमें यह आता है कि जिस दिनसे पुत्रका नाम 'नारायण' रक्खा गया, उस दिनसे प्रतिदिन अनेक बार पुकारनेपर भी न अजामिलके हृदयमें प्रेमका उदय हुआ, न तो दासी-सङ्ग आदि पापोंका निराकरण ही हुआ। युधिष्ठिर आदिके सच्चे भक्त होनेमें भला किसको संदेह हो सकता है; फिर भी उनके जीवनमें बहुत-से दुःख देखे जाते हैं। तब क्या उनका प्रारब्ध निवृत्त नहीं हुआ था? इन सब युक्तियोंसे यह सिद्ध होता है कि यद्यपि नाम-नरेश निरपराध भक्तोंपर प्रसन्न तो तत्काल हो जाते हैं, वे अपने प्रसादका चिह्न समयपर ही प्रकाशित करते हैं। पूर्वाभ्यासके कारण भक्तोंके द्वारा किये जानेवाले पाप भी अकिंचित्कर ही होते हैं—जैसे दाँत तोड़नेके बाद सर्पदंश। भक्तोंके जीवनमें होनेवाले रोग-शोक आदि दुःख भी प्रारब्धके फल नहीं हैं। स्वयं भगवान्‌का वचन है कि—'जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ, उसका धन छीन लेता हूँ। जब वह अत्यन्त दुखी होता है, तब उस बेचारे गरीबको सगे-सम्बन्धी भी छोड़ जाते हैं। यह निर्धनताका महारोग मेरे अनुग्रहकी पहचान है।' वस्तुतः विचार किया जाय तो भगवान् भक्त-हितकारी सिद्ध होते हैं। वे भक्तकी दीनता, उत्कण्ठा आदि बढ़ानेमें बड़े निपुण हैं। इसी कारण भक्तको दुःख देते हैं। अतः भक्तके जीवनमें आनेवाले दुःख प्रारब्धके फल नहीं, भगवान्‌के वरदान हैं।

(चतुर्थ अमृतवृष्टि)

पहले भजन-क्रियाकी दो विधाएँ बतायी गयी थीं—एक अनिष्ठिता और दूसरी निष्ठिता। उनमेंसे पहलीके छः प्रकार वर्णन किये गये। दूसरीका लक्षण बताये बिना ही अनर्थ-निवृत्तिका निरूपण कर दिया। ऐसा करनेका कारण यह है कि श्रीमद्भागवतमें पुण्य-श्रवण-कीर्तन भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके श्रवणसे अनर्थकी निवृत्ति और फिर नैष्ठिकी भक्तिका निरूपण किया गया है। अनर्थकी निवृत्तिमें प्रायः शब्दका प्रयोग होनेसे कुछ अनर्थ शेष रह गये हैं—यह भी सूचित होता है। इसलिये अब नैष्ठिकी भक्तिका निरूपण करते हैं।

'निष्ठा' शब्दका अर्थ है—नितान्त स्थिति, निश्चलता। जिस भक्तिमें निष्ठा—निश्चलता आ जाती है, उसका नाम नैष्ठिकी है। जबतक अनर्थोंकी शिथिलता अथवा निवृत्ति नहीं होती तबतक लय, विक्षेप, अप्रतिपत्ति, कषाय और रसास्वाद—इन पाँच अन्तरायोंका पूर्णतया निवारण न होनेके कारण प्रतिदिन अनुष्ठान करनेपर भी भक्तिकी निश्चलता नहीं हो पाती; अनर्थोंका उपशम हो जानेपर अन्तराय और उनके उपद्रव प्रायः निवृत्त हो जाते हैं। भक्तिमें निश्चलता आ जाती है। इसलिये लय आदि दोषोंका अभाव ही निष्ठाका लक्षण है। लय क्या है!

कीर्तनसे अधिक श्रवणमें, श्रवणसे अधिक स्मरणमें निद्राका आना । विक्षेप क्या है ? उन साधनोंके समय व्यावहारिक गतिविधि एवं बातचीतका सम्पर्क । अप्रतिपत्ति क्या है ? लय-विक्षेप आदि दोषोंके न होनेपर भी कीर्तन आदिमें असमर्थता । कषाय क्या है ? क्रोध, लोभ, गर्व आदिके संस्कार । रसास्वाद क्या है ? विषय-सुखकी प्रतीति होनेपर कीर्तन-आदिमें मनका तन्मय न होना ।

नैष्ठिकी भक्तिका उदय हो जानेपर भी मनमें दोषोंका अस्तित्व तो रहता है, परंतु वे भक्तिमें बाधा नहीं पहुँचाते । इसी कारण श्रीमद्भागवतमें 'अनाविद्ध' शब्दका प्रयोग किया गया है । यह निष्ठा साक्षात् भक्तिमें भी होती है, तदनुकूल वस्तुओंमें भी । भक्ति स्थूल रूपसे तीन प्रकारकी होती है—कायिक, वाचिक, मानसिक । कोई-कोई कहते हैं कि पहले शारीरिक, फिर वाचिक, तब मानसिक भक्ति होती है । दूसरे आचार्योंका मत है कि भक्तोंमें शरीर-बल, इन्द्रिय-बल और मनोबलके पूर्वजन्मगत विलक्षण संस्कार होनेके कारण उनके जीवनमें पहले किसी भी भक्तिका उदय हो सकता है । क्रमका नियम नहीं है । भक्तिके अनुकूल वस्तु है—अमानित्व, मानदत्व, मैत्री और दया आदि सद्गुण । किसी-किसी परिश्रमी साधकमें अपनी भक्तिके अपरिपक्व होनेपर भी इनकी प्रौढ़ता देखी जाती है । किसी-किसी उद्धत भक्तमें भक्तिके परिपक्व होनेपर भी अमानित्व आदि न्यून मात्रामें देखे जाते हैं । इसमें भक्तिकी निष्ठा ही मुख्य है—उसके होनेसे ही अन्तरमें अमानित्व आदि हैं कि नहीं, इसका पता चलता है । बहिरङ्ग अमानित्व आदिका विशेष महत्त्व नहीं है । भगवन्निष्ठाकी अनुभूतिमें वातवत् बहिर्मुख पुरुषोंकी प्रतीति प्रमाण नहीं हुआ करती । वस्तुतस्तु श्रवण-कीर्तनादिमें प्रयत्नकी शिथिलता और प्रबलताको न छोड़ सकना ही अनैष्ठिकी और नैष्ठिकी भक्तिकी पहचान है ।

(पञ्चम अमृतवृष्टि)

अब भक्तके हृदयमें भक्तिकी स्वर्णमुद्रा अभ्यासाग्निकी प्रबलतासे निर्मल एवं उद्दीप्त होकर जगमग-जगमग करने लगती है और भक्तके हृदयमें भक्तिके प्रति अतिशय रुचि उत्पन्न हो जाती है—जब भगवद्विषयक श्रवण-कीर्तन संसारके अन्य समस्त पदार्थोंसे विलक्षण—रोचक जान पड़ने लगता है, तब उसको 'रुचि' कहते हैं । यह रुचि उत्पन्न हो जानेपर बारंबार श्रवण-कीर्तनादि करनेपर भी श्रमकी गन्ध नहीं होती । यही रुचि शीघ्र ही उनको 'व्यसनी' बना देती है । जैसे कोई ब्रह्मचारी विद्यार्थी प्रतिदिन शास्त्रका अध्ययन करे परिश्रमके साथ, परंतु बादमें जब उसका शास्त्रार्थमें प्रवेश हो जाय—वह रोचक लगने लगे, तब उसे किसी प्रकारका श्रम नहीं होता और आसक्ति हो जाती है । ऐसी ही दशा व्यसनीकी होती है । जैसे पित्तदोषसे किसीकी जिह्वा दूषित हो गयी हो और उसे मिश्रीमें मिठास न जान पड़े, तो मिश्रीका सेवन ही उसके लिये पित्तदोषके निवारणकी औषध है । बार-बार सेवन करनेपर उसके स्वादका साक्षात्कार होने लगता है । इसी प्रकार जीवका अन्तःकरण अविद्या, अस्मिता आदि दोषोंसे दूषित हो गया है, इसको शुद्ध करनेका उपाय है—श्रवण-कीर्तनादि भक्ति । दोष-शान्ति होनेपर भक्तिका उदय होता है ।

यह रुचि दो प्रकारकी होती है—एक वस्तुकी विशेषता चाहनेवाली और एक उसकी अपेक्षा न रखनेवाली । वस्तु शब्दका अर्थ है भगवन्नाम, रूप, लीला, गुण आदि । इनमें विशेषकी अपेक्षा करना अर्थात् कीर्तन सुरीला हो, कथामें गुण-अलंकार-ध्वनि आदि प्रसाद-माधुर्य हो, सेवामें स्थान, पात्र आदिकी श्रेष्ठता हो, इन बातोंका ध्यान रखकर भक्तिमें रुचि होना—भक्तिकी न्यूनताकी ही पहचान है । जैसे आज रसोईमें क्या-क्या व्यञ्जन बना है ? यह प्रश्न क्षुधाकी मन्दता ही सूचित करता है । इसी प्रकार अन्तःकरणका दोष ही कीर्तन आदिकी विशेषताकी अपेक्षा चाहते हैं । तीव्र रुचिका तो लक्षण ही यह है कि भगवन्नाम, गुण-रूप, लीला, धाम आदिके वर्णनका प्रारम्भ होते ही रुचि प्रबल हो जाती है और उसे रस-ही-रस दीखता है, दोष नहीं ।

वस्तुकी विशेषता न चाहनेवाली रुचि भगवन्नाम, रूप, गुण, लीला आदिके प्रारम्भमें ही बलवती हो जाती है और उनमें विशेषता होनेपर तो अत्यन्त प्रौढ़ हो जाता है । तीव्र रुचिमें दोष-दृष्टि नहीं होती ।

इसके बाद 'अहो सखे ! तुम मुझसे श्रीकृष्णनामामृतका परित्याग करवाकर क्यों कठिनाईसे मिलनेवाले योगक्षेम आदि संसारी व्यवहारके विषयोंमें डुबा रहे हो ?' 'अथवा मैं तुम्हें क्या कहूँ ! धिक्कार है मुझे, मैं ही अत्यन्त पामर हूँ । श्रीगुरुदेव-कृपाप्रसादसे उपलब्ध और अपनी ही ग्रन्थिमें निबद्ध महारत्नको भूलकर मैं इतने समयतक इधर-

उधर भटकता रहा ! अन्य अगणित व्यापारोंके समुद्रमें मिथ्या सुखलेशसे चमकती कानी कौड़ियोंके पीछे भटककर मैंने अपनी आयु व्यर्थ ही खो दी । भक्तिके किसी भी अङ्गको अङ्गीकार न करके मैंने अपनेको शक्तिहीन ही प्रकट किया । हाय-हाय ! वही हूँ मैं और वही है मेरी जिह्वा, जो झूठ, कटु, ग्राम्यवार्ता—विषयचर्चाको ही अमृतकी चटनीके समान चाटती रही और भगवन्नाम-गुण-कथासे विमुख रही । हाय ! हाय !! कथाश्रवणका आरम्भ होनेपर ही मुझे नींद आ जाया करती थी; किंतु उस कथामें कोई विषय-चर्चा होती तो कान खड़े हो जाते, नींद टूट जाती । हरे राम ! मैंने उस सारी साधुसभाको ही कलङ्कित कर दिया । इस कभी न भरनेवाले पेटके लिये बुढ़ापेमें भी मैंने क्या-क्या पाप नहीं अपनाये । पता नहीं अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये मुझे किस नरकमें रहना पड़ेगा । यों विचार कर रुचिकी ओर अग्रसर भक्तके मनमें निर्वेदकी प्रधानता हो जाती है—इसके साथ ही कभी वह एकान्त भूमिमें बैठकर झूमने लगता है । वेदान्त-कल्पलताके फलका सार प्रभु चरितामृत-आस्वादन करके बार-बार अभिवादन करने लगता है । बार-बार अत्यन्त आदरके साथ संलाप करता है । बैठते-उठते, आते-जाते भगवत्सेवा-परायण हो जाता है । वह होता है तन्मना, लोग समझते हैं उन्मना । वह मानो भक्तजनोंसे भजनानन्दकी शिक्षा प्राप्त करना चाहता है और रुचि, नर्तकी उसके दोनों हाथ पकड़कर प्रेमभक्तिकी 'ताता थेई' सिखा रही है । उस समय उसको ऐसा अभूतपूर्व आनन्द आता है कि वह सोचने लगता है कि अभी यह दशा है, जब हमारे मुख्य नृत्याचार्य भाव और प्रेम मेरे हृदयमें प्रवेश करके मुझे नचाने लगेंगे तब मैं परमानन्दकी किस पराकोटिमें विराजमान हो जाऊँगा ? (शेष आगे)

अहंग्रह-उपासनाका महत्त्व

(लेखक—श्रीरघुनन्दनजी मिश्र)

विश्वके समस्त जीवधारियोंके पाञ्चभौतिक शरीर मूल-रूपमें अविद्या (अज्ञान) का कार्य होनेसे वह सबसे ऊपर रहकर जीवभावको दृढ़ बनाये रखती है । अनेक जन्मोंके संस्कारोंसे मनुष्यकी देहात्मबुद्धि आत्माका साक्षात्कार होनेमें सदैव बाधक बनी रहती है । वेदान्तशास्त्रके श्रवण, मनन एवं निदिध्यासनद्वारा यद्यपि आत्माका परोक्षज्ञान प्राप्त होता है, तथापि बुद्धिमें सूक्ष्मरूपसे व्याप्त विपरीत भावना (देहात्मबुद्धि) का सर्वथा नाश नहीं होता । सद्गुरु मुमुक्षुको महावाक्योंका उपदेश देकर जीवकी बुद्धि-पर पड़े हुए अज्ञान-आवरणको दूर करनेकी कृपा करते हैं, किंतु मुमुक्षुके पुरुषार्थमें कमी होनेसे अथवा यों कहिये कि उसके कषाय परिपक्व न होनेके कारण उसका अज्ञाना-वरण सहजमें दूर नहीं हो पाता, जिसके फलस्वरूप वह आत्माके निरावरण साक्षात्कारसे वञ्चित बना रहता है ।

इस अनन्त विश्वके रचयिता एवं नियन्ता प्रभुने रोग एवं दोषोंके साथ-साथ उनका विरोधी तत्त्व भी अवश्य ही उत्पन्न किया है—जैसे अन्धकारके साथ प्रकाश, शीतके साथ उष्णता आदि-आदि, उसी प्रकार यद्यपि अज्ञानका विरोधी ज्ञान है, तथापि परोक्षज्ञान मूल अज्ञानका सर्वथा नाश नहीं कर सकता, जबतक कि मनुष्यकी बुद्धिमें व्याप्त विपरीत भावनाका सर्वथा अभाव न हो जाय । 'मैं देह हूँ' इस मूल अज्ञानका उच्छेदन करनेके लिये, 'मैं देह नहीं हूँ' इस भावनासे दृढ़ निश्चयके साथ 'अहं ब्रह्मास्मि' के लक्ष्यको अपना ध्येय बनाकर 'अहंग्रह' उपासना की जाती है ।

आत्माका निरावरण साक्षात्कार करनेवाले मनीषियोंमेंसे अधिकांश महापुरुषोंने अहंग्रह-उपासनाको महत्त्वपूर्ण साधन बतलाया है । जिस प्रकार किसी पात्रके अंदर भरी हुई वस्तुको बाहर खाली किये बिना उसमें दूसरी वस्तु नहीं रक्खी जा सकती है, उसी प्रकार हमारे मनके अंदरसे 'मैं देह हूँ' इस विपरीत भावनाको सर्वथा हटाये बिना आत्मबुद्धि उदय नहीं हो सकती । उपर्युक्त विपरीत भावना, देहात्मबुद्धि आत्माका निरावरण साक्षात्कार करनेके मार्गमें दीवाल बनकर खड़ी हुई है, जिसको ढहाकर निरावरण साक्षात्कारका मार्ग प्रशस्त करनेके लिये ही ऋषियोंने अहंग्रह-उपासनाका विधान किया है ।

अहंग्रह-उपासनाका क्रम एवं नियम यह है कि साधक प्रतिदिन प्रातःकाल किसी एकान्त स्थानमें, स्वस्थ एवं शान्त चित्तसे स्थिर आसनसे बैठकर गहरे श्वासोच्छ्वासके साथ 'मैं देह एवं इन्द्रिय नहीं हूँ, मैं देह एवं इन्द्रियों-वाला नहीं हूँ, मैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार भी नहीं हूँ, बरं आकाशवत् निर्मल, निराकार शान्त आत्मा हूँ'—इन

निषेधात्मक भावनाओंका बार-बार मनन करे। कुछ देरमें जब चित्त पूर्णरूपेण स्थिर हो जाय, तब 'मैं सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, अजन्मा, अजर, अमर, अखण्ड ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ' इन विधेयात्मक भावनाओंको अधिक-से-अधिक समयतक दृढ़ श्रद्धापूर्वक बार-बार दुहराता हुआ आत्म-चिन्तन करे और इस चिन्तनमें इतना तल्लीन होनेका अभ्यास करे कि शरीरका भानतक न रहे। कुछ कालतक इस साधनामें नियमितरूपसे संलग्न रहनेपर मनकी विपरीत भावना (देहात्म-बुद्धि) स्वतः क्षीण होने लगेगी और ज्यों-ज्यों यह विपरीत भावना क्षीण होती चली जायगी, त्यों-ही-त्यों 'अहं ब्रह्मास्मि' के लक्ष्यार्थ अपने आत्माका निरावरण साक्षात्कार स्पष्ट होने लगेगा। जो साधक जितनी दृढ़ निष्ठापूर्वक अहंग्रह-उपासना करेगा, उसको उतनी ही शीघ्रतासे अपने स्वरूपकी अपरोक्ष अनुभूति होने लगेगी। इसके साथ ही यदि केवल कुम्भक प्राणायामसे प्राणको धीरे-धीरे स्थिर करनेके अभ्यासके साथ अहंग्रह-उपासना की जाय तो वह अति शीघ्र ही सिद्ध हो जाती है।

अहंग्रह-उपासना यद्यपि प्रारम्भमें 'अहं ब्रह्मास्मि'के लक्ष्यकी प्राप्तिके साधनरूपमें की जाती है, वही आगे चलकर देहात्म-बुद्धिकी विपरीत भावनाका नाश करके अन्तमें निरावरण साक्षात्काररूप फल भी प्रत्यक्ष प्रस्तुत करनेमें समर्थ होती है। इस विषयको ठीक-ठीक समझानेके लिये तो कोई चैतन्यगुरु ही समर्थ होते हैं, फिर भी इस छोटेसे निबन्धमें अहंग्रह-उपासनाके महत्त्वपर अपना अनुभव-मात्र संक्षेपमें प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि पूर्ण श्रद्धाके साथ इस उपासनाको किसी भी आश्रममें रहकर नित्य-निरन्तर किया जाय तो अपने ही अन्तःकरणमें प्रतिष्ठित एवं प्रकाशमान आत्माका दर्शन शुद्ध अन्तःकरणवाले साधकको अवश्य सुलभ हो सकता है; किंतु साधनकी सफलताके लिये लगन एवं निष्ठा होना परमावश्यक है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-सांख्य-स्मृति-तीर्थ)

वेदोंमें ब्रह्मका स्वरूप 'सत्य', 'ज्ञान' और 'अनन्त' शब्दोंसे बतलाया गया है। उपर्युक्त तीनों विशेषण ब्रह्मको अनुभवसिद्ध बतलाते हैं। जिस मनुष्यको ब्रह्मकी जिज्ञासा हो, उसे 'सत्य क्या है, ज्ञान किसको कहते हैं, अनन्त क्या है' इन बातोंको जानना चाहिये। इनको जान लेनेपर स्वतः ब्रह्मज्ञान हो जाता है।

इन तीनोंको जाननेके लिये अनुभवी और ज्ञानी सद्गुरुको प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने ज्ञानयज्ञकी श्रेष्ठता बतलाते हुए अर्जुनसे कहा है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
(गीता ४। ३४)

सद्गुरुके मिल जानेपर सर्वप्रथम अपने आत्माभिमानको छोड़कर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि अत्यन्त विनयके साथ प्रश्न करना चाहिये; अर्थात् अपने शास्त्र-ज्ञान और लोक-सम्मान आदिका गर्व छोड़कर विश्वासपूर्वक जिज्ञासितव्य विषयको उनके समक्ष उपस्थित करना चाहिये। साथ ही उनकी शुश्रूषा भी करनी चाहिये। गुरुकी या भगवान्की आज्ञाओंका पालन करना ही उनकी सेवा है। गुरुके पास जानेपर उनके स्वभाव और उनकी आवश्यकताओंको समझकर उनके अनुकूल अपना आचरण बनाना चाहिये और इस बातपर सदा ध्यान देना चाहिये कि मेरे आचरणसे गुरुको मानसिक कष्ट या संकोच तो नहीं हो रहा है।

इसीलिये कहा गया है—

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।

अर्थात् सेवा करना अत्यन्त कठिन है, यह विषय योगियोंके लिये भी अगम्य है। ऐसा इसलिये कहा गया है कि सेवकको अपनी इच्छाको सर्वथा गौण समझकर गुरुकी इच्छाको ही अपनी इच्छा मान लेना पड़ता है। उदाहरणके लिये धौम्य ऋषिके शिष्य आरुणि, उपमन्यु और वेदकी कथा पुराणोंमें आती है।

अर्जुनने गीताके दूसरे अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णको अपना गुरु मान लिया। यथा—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

अर्थात् 'ममत्वबुद्धिसे मेरा क्षत्रियोचित स्वभाव नष्ट हो गया है। अतः मुझे कर्तव्यका ज्ञान नहीं हो रहा है। इसलिये जिससे मेरा कल्याण हो, उसको निश्चित करके मुझे अच्छी तरह समझा दीजिये। मैं आपकी शरणमें हूँ और शिष्यत्व स्वीकार करता हूँ। आप मेरे गुरु बनिये। मैं सब तरहसे आपकी शरणमें अपनेको समर्पित करता हूँ।'

भगवान्ने प्रत्यक्षरूपसे यद्यपि यह नहीं कहा कि मैं तुम्हारा गुरु बनता हूँ, परंतु कार्यरूपसे उन्होंने गुरुका काम किया। भगवान् श्रीकृष्ण तो जगद्गुरु अनादि कालसे हैं। अतः उनको कहनेकी आवश्यकता भी नहीं थी।

मनुष्यका कल्याण तीन तरहकी साधनाओंसे होता है। उन तीनोंमें जो जिसका अधिकारी होता है, उसका कल्याण उसी साधनासे हो जाता है। अतः उन तीनों साधनोंका उपदेश दिया—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। इन तीनोंका रहस्य भगवान्ने गीतामें बतलाया है।

सर्वप्रथम भगवान्ने द्वितीय अध्यायमें सांख्ययोग अर्थात् ज्ञानयोगका महत्त्व बतलाया। उसी ज्ञानके विषयमें कहते हुए चतुर्थाध्यायमें ज्ञानकी सर्वश्रेष्ठता बतलायी—

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥

और भी कहा—

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ॥

इस तरह ज्ञानकी महत्ता बतलाकर कर्मकी महत्ता बतलायी। यथा—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

भगवान्के कहनेका तात्पर्य यह है कि मनुष्य एक क्षण भी बिना कर्म किये रह नहीं सकता; क्योंकि मनुष्यका स्वभाव है कर्म करनेका।

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

इसलिये आसक्तिसे रहित होकर निष्कामभावसे कर्म करते रहना ही 'योग' कहलाता है और कर्म करनेमें चतुरता यही है कि अनासक्तभावसे कर्म करें। यही कर्मयोग है और योग ही कर्ममें कुशलता है—'योगः कर्मसु कौशलम्' इस तरह निष्काम भावसे कर्म करनेवालेको परम पुरुष (ब्रह्म) की प्राप्ति होती है।

इसके पश्चात् भगवान्ने भक्तियोगको बतलाया और भक्तियोगको ज्ञानयोगसे श्रेष्ठ बतलाया; क्योंकि ज्ञानयोगकी साधनामें कष्ट है और उसमें समय भी अधिक लगता है तथा विघ्न-बाधाएँ भी अधिक होती हैं—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥

अव्यक्त (अर्थात् अदृश्य) परब्रह्मकी उपासना करनेवालेको अधिक कष्ट होता है, क्योंकि जबतक देहाभिमान रहता है, तबतक परमगति प्राप्त नहीं होती। जब देहाभिमान चला जाता है, तब परमगति प्राप्त होती है और देहाभिमान जल्दी छूटता नहीं है। भक्तियोगकी साधनामें निम्नलिखित सुगमता बतलायी गयी है।

भक्तियोगमें केवल इतना ही होता है कि कर्मफलको भगवान्के चरणोंमें समर्पित कर देना पड़ता है। ऐसा करनेपर भगवान् उनके उद्धारकी जिम्मेवारी स्वयं ले लेते हैं। यथा—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥
(गीता १२ । ७)

इस तरह ज्ञान-प्राप्तिके तीनों साधनोंको बतलाया और अर्जुनको तृतीयाध्यायमें कर्मयोग करनेको कहा। अर्जुनके मनमें यह ग्लानि बनी ही रह गयी कि क्षात्रधर्ममें हिंसाका दोष है। ब्राह्मणधर्म ग्रहण करनेसे स्वधर्मत्यागका दोष लगता है। भक्तियोगकी साधना कठिन है। इस बातको समझकर भगवान्ने अन्तमें कहा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

इस तरह भगवान्ने भक्तियोगमें शरणागतिको सर्वश्रेष्ठ बतलाकर अर्जुनको युद्धमें प्रवृत्त किया।

इन तीनों योगोंमें 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'का ही प्रतिपादन किया गया है।

सत्यका प्रतिपादन—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

—इस श्लोकसे किया। अपने ज्ञान-स्वरूपको उन्होंने सातवें अध्यायके दूसरे श्लोकमें बतलाया। यथा—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥

ब्रह्मज्ञान हो जानेके पश्चात् और कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता। पश्चात् दसवें अध्यायके १९ वें श्लोकमें भगवान्‌ने कहा—

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥

इस श्लोकसे भगवान्‌ने अपनी अनन्तता बतलायी। वस्तुतः देखा जाय तो प्रतिक्षण भगवान्‌की विभूति दिखलायी पड़ती है। भगवान् किस रूपको धारण करके किस कामको करेंगे, इसको कौन जानता है। आवश्यकता पड़नेपर भगवान् अभूतपूर्व रूप धारण कर लेते हैं। हिरण्यकशिपुको मारनेके लिये उन्होंने नरसिंह-रूपको धारण किया। इससे उन्होंने ब्रह्मा-के द्वारा दिये गये वरदानकी रक्षा की; क्योंकि उसने वरदान माँगा था कि संसारमें उस समयतक जिन प्राणियोंकी सृष्टि हो चुकी थी, उनसे वह न मरे। भगवान्‌ने वैसा ही अभूतपूर्व रूप धारण किया। भविष्यमें भगवान् कैसा रूप धारण करेंगे इसको कौन जानता है।

भगवान्‌ने अपने गुरुत्वको भलीभाँति निभाया। गुरुका काम है अपने शिष्यको संसारके बन्धनसे मुक्त करना। जो ऐसा नहीं करता, वह यथार्थ गुरु नहीं है। श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें लिखा है—

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥
(श्रीमद्भा० ५।५।१८)

'जो गुरु सदाके लिये मृत्युके भयसे मुक्त न कर सके, वह गुरु होनेके योग्य नहीं है। वे स्वजन और माता-पिता भी कहलानेके योग्य नहीं हैं, वह भाग्य एवं स्वामी भी यथार्थ रूपमें नहीं है, जो मुक्तिपथमें सहायक न हों, बल्कि बाधक हो।' श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध, द्वितीयाध्यायके २६ वें श्लोकमें ब्रह्मके सत्य-स्वरूपका वर्णन यों किया गया है—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

महर्षि नारद प्रभृति ऋषिगण, ब्रह्मा और शिव सभी मिलकर स्तुति करते हैं—'हे भगवन्! आप सत्य-संकल्प हैं, सत्यसे परे हैं, तीनों कालों (भूत-भविष्य-वर्त्तमान) में रहनेवाले हैं। आपसे ही सत्यकी उत्पत्ति है और आप सत्यमें ही स्थित हैं। आप सत्यके भी सत्य हैं, सत्य-ऋत आदि शब्दोंसे कहे जानेवाले सत्यके नेता हैं। ऐसे सत्यात्मक ब्रह्मस्वरूप आपकी शरणमें हमलोग आये हैं।'

अतः अर्जुनकी तरह सद्गुरुसे शिक्षा प्राप्तकर 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'को जानकर ऐहिक और पारमार्थिक कल्याण प्राप्त करना चाहिये।

दर्शनसे अतृप्ति

कमल मुख देखत कौन अघाय।
सुनि री सखी लोचन अलि मेरे मुदित रहे अरुझाय॥
मुक्तामाल लाल उर ऊपर जनु फूली वन-राय।
गोबर्धनधर अंग अंगपर 'कृष्णदास' बलि जाय॥

—कृष्णदास

लोकैषणाकी छातीपर

(लेखक—प्रो० श्रीबाँकेबिहारीजी झा 'करील', एम्० ए०, साहित्याचार्य)

ओड़छा-नरेश मधुकरशाहके सभापण्डित, अखिल-शास्त्रवेत्ता, उद्भट विद्वान् हरिराम व्यासको वृन्दावनके तमालों और कदम्बोंसे लिपटकर सिड़ीके सदृश कलपते देखकर सभ्यता चकित हुई। अद्वितीय नैयायिक निमाई पण्डितको नवद्वीपकी गलियोंमें बेसुध नाचते देख विद्वत्ता मूर्च्छित हुई। मेवाड़की राजरानी मीराँको पैरोंमें घुँघरू बाँधे, लोकलाजकी तिलाञ्जलि दिये थिरकती देख प्रभुता अकुलायी। 'अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः' मधुसूदन सरस्वतीको किसीकी सलोनी छबिपर लुटते देख वेदान्त तड़प उठा। वृन्दावनमें नाभाजीद्वारा आयोजित संतोंके जलसेमें गोस्वामीजीको जूतेकी पत्तल बनाते देख कुलीनता कराह उठी। अभी हालमें शिक्षा-विभागके एक उच्च सरकारी अफसर भगवानप्रसादको—

किरिया हमार तनि कहि द ए बालम,
रुपिया हमार दिलजनियाँ ए राजा,
तोहरे पर भइलीं जोगिनियाँ।'

—कहकर साड़ी पहने हुए गाते देखकर पदप्रतिष्ठा और मर्यादा भूलुण्ठित हुई।

हरिरामजीको किसने बहकाया? निमाई पण्डितको किसने पागल बनाया? भोली-भाली मीराँको किस निर्मोहने बावली बनाकर उसका सर्वस्व छीना? मधुसूदन सरस्वतीको किस शठने लूटा? गोस्वामीजीको किसने फँसाया? भगवानप्रसादजीको किसने रूपकला-का सेहरा देकर फुसलाया?

सोचता हूँ और अधीर हो जाता हूँ। सचमुच इन बेचारोंको बरबाद करनेवाला परम स्वतन्त्र और मनचला नायक बड़ा जादूगर है। इससे दिल लगा कि बुद्धि रहते मूर्ख बनो, आँखें रहते अंधे बनो, कान रहते बहरे बनो, वैभव रहते कंगाल बनो और पखेरू-की तरह वन-वन भटको। उस व्रजाङ्गनाने एक ढीठ भौंरेको फटकारनेके मिस मानो सभी दिलवालोंको चेतावनी दी—

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इव विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति॥
(श्रीमद्भा० १०। ४७। १८)

जिसके लीलारूपी कर्णामृतकी एक बूँद पीकर मनुष्य द्वन्द्वातीत हो जाते हैं और शीघ्र ही अपने आकुल घर-परिवारको छोड़, दीन बने, पक्षियोंकी तरह भटकते हुए भीख माँगते फिरते हैं।

जिसकी कथाका यह सब पिटारी जादू है, उसका प्रेम कैसा भयंकर होगा! तभी तो पण्डितराज जगन्नाथने उस कितवसे अपने मनको हटे रहनेकी सलाह देकर वस्तुतः अपना पण्डितराजत्व चरितार्थ किया है—

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्
वृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुदनिभो बन्धुर्न कार्यस्त्वया।
सौन्दर्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति॥

रे चित्त! तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ। वृन्दावनमें गायोंको चराते हुए नवनीरदसुन्दर किसी एक छैलको कहीं बन्धु न बना लेना। वह चारों ओर सौन्दर्यामृत बिखेरती हुई अपनी मन्द मुस्कानसे शीघ्र ही तुम्हें और तुम्हारे प्रिय सभी विषयोंका नाश कर देगा।

किंतु आश्चर्य है, उस कितवके फेरमें वे भी अपनी बुद्धि खो ही बैठे और—

'मदीयमतिचुम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी'
—की रट लगानेको विवश हो गये।

बात यहीं समाप्त नहीं होती। एक ओर तो सर्वस्वापहरण करके जीवनको बेकार बना देनेकी यह निर्मम क्रीड़ा, साथ ही दूसरी ओर असंख्य कष्टोंकी बौछार। जिसने उससे दिल लगाया, उसे क्या-क्या कष्ट नहीं झेलना पड़ा? सुकुमार बालक प्रह्लादको धू-धू करके जलती हुई आगतकमें बैठना पड़ा, मीराँको जहर पीना पड़ा, हरिदासको सरेबाजार कोड़ोंकी मार खानी पड़ी, बिल्वमङ्गलको आँखोंसे हाथ धोना पड़ा, कबीरको वेश्यागामिताका मिथ्या कलङ्क लेना पड़ा। और ऐसे कितने हुए, जिन्हें उससे प्यार करनेके कारण संसारके सारे आकर्षणोंसे विछोह तो हुआ ही, विविध यातनाएँ भी भोगनी पड़ीं। युगोंसे इतिहास साक्षी है।

यदि ऐसी ही बात है, तो फिर उत्तमश्लोक, पुरुषोत्तम, आनन्दकंद, अकारण करुणामय, अहैतुक दयालु-जैसी संज्ञाएँ उसे किसने और क्यों दीं? किस उत्कोच-लोलुपतापर किसीने उसके लिये ऐसी वकालत की? मन नहीं मानता कि वह वैसा है, उतना निर्मम है। आह! उसकी दयालुता! कितना कोमल है उसका हृदय! कितना अगाध है उसका स्नेह! कैसा मोहक और उदात्त है उसका अनुराग! उसके प्रेमसे कोई उऋण हो सकता है? अपने प्रेमीके लिये सर्वस्व निछावर करना उससे बढ़कर कौन जानता है? तन, धन, धाम, मनको तिलाञ्जलि देकर वह अनुक्षण अपने प्रेमियोंकी आराधना करता रहता है। उनके लिये वह अपने अखिल ब्रह्माण्डनायकत्वको भूलकर सदा क्षुद्र-से-क्षुद्र कार्य करनेमें भी अपनेको कृतार्थ मानता है। सेना नाईके लिये वह एक घोर विषयीका चाकर बना; सखूके लिये उसे किसी पामरकी पत्नीतक बननेमें हिचक न हुई; जनाके साथ उसने चक्की पीसी; नरसीके लिये उसने सेठका सेहरा स्वीकार किया; तुलसीकी पहरेदारी की; भगवानप्रसादके लिये उसे डिपटीसाहब बनना पड़ा। क्या-क्या स्वाँग नहीं रचता है वह अपने प्रेमियोंके लिये? घोड़ेकी लगाम पकड़े हुए पार्थसारथिके रूपकी याद करके किस सहृदयकी आँखें नहीं भर आतीं? अपनोंकी इज्जतके सामने वह अपनी इज्जतको खाक समझता है। उसी कुरुक्षेत्रमें भीष्मकी प्रतिज्ञाको रखनेके लिये उसने अपनेको च्युतप्रतिज्ञ किया। भीष्मके ही शब्दोंमें उसकी तत्कालीन झाँकी कितनी भावमय है—

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञा-
मृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-
र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः॥
(श्रीमद्भागवत)

'मेरी प्रतिज्ञाको पूरी करनेके लिये अपनी प्रतिज्ञा छोड़, रथसे कूदकर रथका पहिया लिये, हाथीको मारनेके लिये एक सिंहकी तरह, पृथ्वीको कँपाते हुए दौड़ पड़े; उस समय शरीरपरसे चादर गिरती जा रही थी।'

उसकी उदारता, कृतज्ञता और स्नेहमयताका बखान सहस्र-सहस्र मुखोंसे भी नहीं हो पायेगा। कैसी सुन्दर त्रिभुवनमोहिनी छवि है उसकी! कोटि-कोटि मन्मथका सौन्दर्य भी एक-एक रोमकी छविपर निछावर कर दिया जाय! लेकिन अपनोंके कष्ट-निवारणार्थ लाज छोड़कर कभी भद्दा कछुआ, कभी गिलगिली मछली, कभी घिनौना सूअर, कभी घोड़ा और कभी मनुष्य तथा पशुका मिला हुआ अजीब चेहरा बनानेमें भी हिचकना तो दूर, उसने अपनेको धन्य समझा। उफ्! इतना प्यार कौन किसीको करेगा? सच पूछो तो वह लुटाये हुए है अपनेको प्रेमियोंके पीछे। कितना मर्मस्पर्शी वचन है—

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।
(श्रीमद्भागवत)

'मैं सदा अपने भक्तोंके पीछे-पीछे इसलिये घूमता रहता हूँ कि उनके चरणोंकी धूलसे मैं पवित्र हो जाऊँ।'

किंतु तब उसकी पिछली शिकायतोंका समाधान क्या है ? इस द्वन्द्वलीलाका रहस्य क्या है ? इस विरोधका परिहार कैसे हो ? एक साथ उतना कठोर और इतना कोमल ? उतना निर्मम और ऐसा स्नेही ? उतना निर्घृण और इस तरह दयालु ? वैसा बेवफा और इतना कृतज्ञ ? अद्भुत विडम्बना है । इस द्वन्द्वमयी व्यक्तिमत्तामें है कोई अन्वय ?

हाँ, अन्वय है और बड़ा समीचीन है । बहुत हृदयावर्जक है, अतीव मनोरम है। यहाँ एक प्रसङ्ग याद आता है । एक दिन एक गोपीने नील-सुन्दरके कर-कमलमें पड़ी हुई बाँसुरीको बड़े आक्रोशसे उपालम्भ दिया—

अधर सेज, नासा बिजन, स्वर मिलि चरन दबाय ।
अरी सुहागिनि मुरलिया, लियौ स्याम बिलमाय ॥

नीलसुन्दरने एक मीठी मुस्कानसे बाँसुरीकी ओर देखा । चिन्मयी बाँसुरीने प्यारेका संकेत समझकर उस गोपीको बतलाया—

अंतर की सरबस तजी, कुल तजि तनहिं जराय ।
सौंपि निजहिं प्रभु कर भई, सदा सुहागिनि माय ॥

बाँसुरीके इसी उत्तरमें उपर्युक्त उलझनका सारा रहस्य छिपा हुआ है । भक्तिका वास्तविक मर्म है अपनेको सर्वथा निःस्व बनाकर, खाली करके उस परम प्रेमास्पद प्रभुपर निछावर कर देना, समर्पण कर देना, चढ़ा देना । अन्तर्बहिः प्रभु ही हो जायँ, जीवनका प्रत्येक स्वर प्रभुका स्वर हो ।

वस्तुतः अनन्यताविहीन भक्ति विडम्बनामात्र है । 'भज् सेवायाम्'में बिना 'क्त' लगे 'भक्त'की निष्पत्ति नहीं होती और भगवान् पाणिनिने 'क्तक्तवतू निष्ठा' सूत्रमें 'क्त' की 'निष्ठा' संज्ञा देकर बड़ी मार्मिक मनीषाका परिचय दिया है । अतः व्याकरणगत व्युत्पत्तिके अनुसार भी अनन्यनिष्ठासे युक्त सेवक ही भक्त है । और निष्ठा क्या है—'निर्विशेषेण स्थीयतेऽनया'; आराध्यमें समस्त चित्तवृत्तियोंके सर्वाङ्गीण, निरपवाद स्थिरीकरणकी क्रिया निष्ठा कहलाती है । जब आराध्यमें अनन्यनिष्ठा हो जाती है, तब फिर आराध्यके अतिरिक्त भक्तके हृदयमें किसी तरहकी चाह नहीं रह जाती । इतना ही नहीं, अनन्यनिष्ठाके पश्चात् एक निर्हेतुक, सहज अनुरागका उदय होता है; तब आराध्यतकके सांनिध्यकी चिन्ता नहीं रहती और तब भक्त 'प्रेमी' बनकर निरन्तर आराध्यके प्रेममें ही मस्त रहता है । प्रियतमकी याद, उसका नाम—बस, इसके अतिरिक्त वह कुछ नहीं चाहता । यही भक्तिकी मधुमती भूमिका है, जहाँ पहुँचकर अखण्ड आनन्द-ही-आनन्द शेष रहता है । आँसुओंकी झड़ी, रोमाञ्च, उन्माद, मस्ती, बेसुधी, लापरवाही—ये ही तत्त्व उस समय रहते हैं । ऐसे मस्तोंकी दुनियामें भौतिक सुखकी कोई कीमत नहीं । संसार चाहे कुछ कह ले—

हमन हैं इश्क मस्ताना हमनको होशिआरी क्या ।
(कबीर)

उनके हृदयमें लोकैषणाका कोई स्थान ही नहीं रहता ।

मानव-जीवनकी सबसे बड़ी साध इसीमें है, मानव-शरीरकी प्राप्ति इसीलिये होती है । संसार सपना है । स्त्री-पुत्र-मित्रादि चार दिनोंके साथी हैं, सो भी स्वार्थमय । भौतिक ऐश्वर्य कराल कालके भीषण जबड़ोंमें एक कौरके भी बराबर नहीं । यह सोने-जैसी काया राखकी ढेरी होगी । नीतिकारोंकी **'कीर्तिर्यस्य स जीवति'** जैसी उक्तियाँ मरणधर्मा जगत्में एक मोहक भ्रमसे अधिक कुछ नहीं हैं । मनुष्य मूलतः और सर्वांशतः अपने आनन्दके लिये ही कुछ भी करता है । उपनिषद्की घोषणा है—

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वः प्रियो भवति ॥

ऐसे मानवको यदि विश्वव्यापिनी ही कीर्ति मिल गयी तो क्या, जब वह उसका सार्वकालीन, चिरंतन

आनन्द लेनेमें अक्षम होकर सदाके लिये चल बसेगा। तात्पर्य यह कि सांसारिक समस्त क्रियाकलाप अपने-आपमें खोखला है। इसलिये हमें अखण्ड सौन्दर्यमय, अनन्त सौख्यमय, चिरंतनानन्दमय भगवत्प्रेमका उज्ज्वल संसार बसाना है, ताकि हम कभी धोखा नहीं खायें।

किंतु वह उदात्त प्रेम कैसे प्राप्त हो? अनवरत मायाके निर्मम प्रहारोंसे जर्जर मानवके कलुषित हृदयमें विमल अनुरागमयी दिव्य चिदानन्दस्वरूपा भक्तिका उदय कैसे हो? 'सुत बित लोक ईषना तीनी'से हम अहर्निश अनुलिप्त हैं। हमें तो लाखोंका 'बैंक बैलेन्स', हजारों बीघे जमीन, बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ, अट्टालिकाएँ चाहिये। स्त्री-पुत्रादिके स्वार्थमय मोह, संसारकी झूठी मित्रता, ऊँची कुर्सीका लोभ, कीर्ति-लोलुपतादिसे हमें अवकाश कहाँ, जो हम प्रभु-प्रेमकी बात सोचें। यों हम ईश्वरपरायण भी हों, तो ईश्वर-प्राप्तिको ही एकमात्र चरम लक्ष्य मानकर तदनुसार जीवनयापनकी बातमें हमें रुचि नहीं, श्रद्धा नहीं, आकर्षण नहीं।

प्रभु-पथपर बढ़नेमें हमारी सबसे बड़ी वैरिणी लोकैषणा ही है। स्त्री-पुत्र, धन आदि सबको त्यागकर भी साधक लोकैषणाके चक्करमें फँस ही जाता है। सर्वस्व त्याग करनेके बाद भी 'त्यागी' कहलानेकी कामना नहीं जाती। लोग मुझे महान् समझें, यह भावना पिण्ड नहीं छोड़ती। बस, यहीं प्रभुकी कृपाकी विचित्र और रहस्यमयी लीलाका चमत्कार स्फुरित होता है। जिस भाग्यवान् मानवको वे अपनी दिव्यानन्दमयी प्रेमभूमिमें खींचना चाहते हैं, एक-एक करके उसकी समस्त सांसारिक भूति (जो उसके प्रभुका अनन्य प्रेमी बननेमें बाधक है) पर निर्मम प्रहार करना प्रारम्भ कर देते हैं। धीरे-धीरे उसके जीवनके सांसारिक रूपको इतना बेकार कर देते हैं कि वह विवश होकर उनकी ओर दौड़ पड़ता है। फिर वह इस भवमरीचिकाके चाकचिक्यके थोथेपनको समझ जाता है। यही प्रभुकी कृपाका रहस्य है। नारदपाञ्चरात्रमें प्रभुकी घोषणा है—

देशत्यागो महान् व्याधिर्विरोधो बन्धुभिः सह।
धनहानिरपमानं च मदनुग्रहलक्षणम्॥

देशत्याग, महान् व्याधि, बन्धुओंसे विरोध, धनहानि और अपमान—ये मेरे अनुग्रहके लक्षण हैं।

श्रीमद्भागवतमें भी उन्होंने कहा है—

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।

जिसपर मैं कृपा करता हूँ, धीरे-धीरे उसका धन हरण कर लेता हूँ। प्रेमपथपथिककी प्रभु बार-बार परीक्षा लेते हैं। बँगलामें एक उक्ति है—

जे करे आमार आश, तार करि सर्वनाश।
तबू जे ना छाड़े आश, तारे करि दासानुदास॥

प्रभु जिसे अपना बनाते हैं, उसको कर्मडोरसे छुड़ानेके लिये नारकीय यातनाओंका भोग भी यहीं कराने लगते हैं, जैसे माँ अपने बच्चेके घावको मिटानेके लिये निर्ममतापूर्वक उसे चिरवाती है—

जदपि प्रथम दुख पावइ, रोवइ बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी, गनति न सो सिसु पीर॥
(रामचरितमानस)

अतः मर्मज्ञ भगवत्प्रेमियोंने तो दुःखको ही अपना परम प्रिय मित्र माना है; क्योंकि उसमें प्रभु याद आते हैं। कबीरने खुले दिलसे कहा है—

सुख के माथे सिल परौ, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल-पल नाम रटाय॥

दुःखमें ही प्रभुकी मधुर झाँकी सहारा देने आती है; या यों कहिये कि दुःख प्रभु-आगमनका संदेश-वाहक है, वह प्रभु-कृपाका प्रत्यक्ष स्नेहिल वरदान है। तभी तो प्रेममयी कुन्तीने प्रभुसे माँगा—

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
(श्रीमद्भागवत)

'हे जगद्गुरो! हमें सदा विपत्तियाँ ही मिलें, जिससे आपकी झाँकी प्राप्त होती रहे, जो आवागमनसे छुड़ानेवाली है।'

विविध कष्टोंकी बौछारसे भगवत्प्रेमीका प्रेमी हृदय अधिकाधिक प्रक्षालित होकर प्रभुके लिये छटपटाता है। तभी वह लोकैषणाकी छातीपर खड़ा होकर विजयका शङ्खनाद कर सकता है; क्योंकि उसके लिये तो 'प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा' हो जाती है। फिर तो आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है। उसकी एकमात्र कामना यही रहती है कि प्रेमकी मस्ती बनी रहे। प्रभुको छोड़कर उसे और कुछ नहीं चाहिये—

जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल खावै।
(सूरदास)

श्रीमद्भागवतान्तर्गत भक्तराज वृत्रकी स्तुतिके इन दो श्लोकोंमें भक्त-हृदयकी कामनाकी मधुर झाँकी प्रस्तुतकर लेख समाप्त करता हूँ—

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

हे प्रभो! मैं आपको छोड़कर स्वर्गका सिंहासन, ब्रह्माका पद, पृथ्वीका सार्वभौम राज्य, योगसिद्धियाँ अथवा मोक्ष—कुछ भी नहीं चाहता। प्रियतम! कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनोंके लिये उसी तरह उत्कण्ठित है, जैसे पंखहीन पक्षिशावक अपनी माँके लिये, भूखे बछड़े माँके दूधके लिये या प्रियतमा अपने प्रवासी पतिके लिये दुखी हो।

श्यामका स्वभाव—३

(लेखक—ठा० श्रीसुदर्शनसिंहजी)

मया यशोदाका लाल बहुत संकोची है। लेकिन नटखट इतना है कि अपना संकोच भी अपने नटखटपनके आवरणमें ढक लेता है। यह नटखटपन श्रीरघुनाथमें नहीं है, इसलिये उनका नाम ही एक मित्रने 'संकोचीनाथ' रख दिया। स्वभाव तो बदलता नहीं रूप बदल लेनेसे। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा—

सकुचत सकृत प्रनाम किये ते।

कोई एक बार मस्तक झुका देता है आपको तो आप संकोचसे गड़ जाते हैं कि 'मैं तो इसका कोई बड़ा हित नहीं कर सका।' बड़ा हित—अब जो जितना बड़ा, उसकी दृष्टि भी उतनी बड़ी। उसकी दृष्टिमें हित भी वैसा। कंगाल किसीको पाँच पैसे दे दे तो अपनी दृष्टिमें बड़ा दान—पाँच पैसेका दान किया उसने और करोड़पति पाँच सहस्र रुपये भी दे दे तो सोचेगा—'केवल पाँच सहस्र ही तो।' अब जो अनन्त ऐश्वर्य-सिन्धु हैं, उनकी दृष्टिमें 'बड़ा हित'—बड़ा कहाँसे आये कुछ उनकी दृष्टिमें।

जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्ही॥
(विनयपत्रिका)

अपने दस मस्तक काटकर हवन कर दिये रावणने और तब उसे जो सम्पत्ति, जो ऐश्वर्य वरदानके रूपमें प्राप्त हुआ, वही ऐश्वर्य विभीषणको बड़े ही संकोचसे श्रीरामने दिया। बड़ा संकोच—'यह नन्ही सम्पत्ति मैं क्या दे रहा हूँ।'

× × × ×

सुदामा मित्र थे श्रीकृष्णचन्द्रके। गुरुगृहके सहपाठी थे। पत्नीने बड़े आग्रहसे भेजा था उन्हें द्वारका। सुदामाकी दशा अत्यन्त दयनीय थी—

धोती फटी-सी, लटी दुपटी, नहिं पायँ उपानह कौ कछु सामा।

कटिमें मैली, चिथड़े-सी धोती और कंधेपर उससे भी मैला-फटा उत्तरीय। अत्यन्त दुर्बल शरीर। एक-एक हड्डी और नस दीख रही। नंगे पैर वे वह भी बिवाइयोंसे चिथड़े हो रहे।

समाचार मिला—

पूँछत दीन दयालु का धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा।

'सुदामा!' श्रीद्वारकाधीश अन्तःपुरमें महारानी रुक्मिणी-के सदनमें पर्यङ्कपर विराजमान थे और वे निखिल ऐश्वर्यमयी

व्यजन कर रही थीं। 'सुदामा आये हैं।' इतना सुना और दौड़े—कहीं पटुका गिरा और कहीं छूटा मुकुट। दौड़कर हृदयसे लगा लिया। भीतर भवनमें लाकर उसी पर्यङ्कपर बैठाया और स्वयं नीचे चरण धोने बैठे सुदामाके। जिनके चरणोंमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और देवेन्द्र दूरसे मस्तक रखते हैं, वे स्वयं ब्राह्मणके चरण हाथमें लेकर धोने बैठे। सुदामाके चरणोंपर दृष्टि गयी और कमललोचन विह्वल हो गये—

'ऐसो बेहाल बेवाइनसौं मग कंटक जाल गड़े पुनि जोये।
हाय महादुख पाये सखा ! तुम आये इतै न, कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोये।
पानि परातको हाथ छुयौ नहिं, नैननिके जल तें पग धोये॥'

वह स्वागत, वह सत्कार, वह आत्मीयता कि सेवक-सचिव ही नहीं, अपने स्वामीके स्वभावको जाननेवाली राजमहिषियाँतक चकित-थकित रह गयीं।

सुदामाको पता नहीं और उनके लाये चिउरोंके दाने चबानेके बहाने उन्हें ऐश्वर्य देने लगे तो स्वयं महालक्ष्मी-रूपा महारानी रुक्मिणी घबरा गयीं कि 'ये आज करने क्या जा रहे हैं।' एक मुट्ठी चिउरे चबाकर जब दूसरी मुट्ठी श्यामने भरी, तब उन्होंने हाथ पकड़ लिया—'नाथ ! बहुत हो गया। इस लोक और परलोकका सम्पूर्ण ऐश्वर्य तो आप एक मुट्ठीके साथ दे चुके।'

अपने स्वामीके संकोची स्वभावको जाननेवाली महारानीने भी वैसा ही अभिनय किया। उन्होंने भी कहा—'अकेले ही आप सब ग्रहण कर लेना चाहते हैं ? आपके इन महाभाग मित्रका यह अमृतोपहार मुझे और मेरी बहिनोंको भी तो मिलना चाहिये। हमें तो एक-एक दाना ही अब अपने भागमें मिलेगा। आप इससे भी हमें क्यों वञ्चित करते हैं।'

यह सब स्वागत-सत्कार, सब अद्भुत व्यवहार ! किंतु जब सुदामाको विदा करनेका अवसर आया, तब क्या हुआ ?

नटखटपन छोड़ दे तो कन्हाई ही काहेका। आप सुदामासे कहते हैं—'भैया ! मार्ग लंबा है और मार्गमें दस्युओंका भय भी है। यदि ये रत्नाभरण······।'

सुदामाको मुक्तामाला, रत्नाङ्गद आपने अपने हाथसे पहिनाये थे। अब यह कहते तो संकोच लगता है कि 'यह प्रसाद देते जाइये। इन्हें धारण करके मैं अपनेको परिपूत अनुभव करूँगा।'

'मार्ग लंबा है। मार्गमें दस्युओंका भय है।' कोई पूछे इनसे कि द्वारकामें रथ, अश्व, हाथियोंका अभाव हो गया है ? मार्ग लंबा है तो आप ब्राह्मणको पैदल भेज क्यों रहे हैं ?

मार्गमें दस्युओंका भय है तो आपका चक्र किस दिन काम आयेगा ? चक्र निष्प्रभ हो गया है या उसने आपका आदेश-पालन बंद कर दिया है ? आपका नाम लेकर मनुष्य तीनों लोकोंमें निर्भय हो जाता है। भयके भी पद भयकम्पित होते हैं आपके चरणाश्रितके सम्मुख और आप अपने सखाको मार्गमें दस्युओंका भय बतलाते हैं ?

किंतु किसीको यह प्रकट करनेमें संकोच लगता है कि—'मैंने मित्रको कुछ दिया। मैंने मित्रकी कुछ सेवा की।' इसका क्या उपाय ? सुदामाको लगना नहीं चाहिये, कम से-कम सम्मुख नहीं लगना चाहिये कि श्रीकृष्णने उनको कुछ दिया, उनकी कुछ सेवा की। श्यामको लगता है कि मित्रके नेत्रमें कृतज्ञताके भाव आयेंगे तो उसे वह सह नहीं सकेगा। इसलिये यह सब नटखटपन—अपने संकोचको छिपानेके लिये यह सब लीला—चापल्य है।

सुदामाने सोने-जवाहरातके गहने उतार दिये चुपचाप। उनको न इनका मोह था न लोभ। अकिंचन, वीतराग ब्राह्मणके लिये ये अनुपयोगी थे। सखाने स्नेहसे पहिनाये थे, इसलिये पहिने हुए थे। श्यामके स्नेहका तिरस्कार कैसे करते; किंतु उतारनेमें लगा—'मोहनने बड़ी कृपा की। इस क्षीणकायापर इतना भार मैं कैसे ढोता।'

'अच्छा ! आप यह अमूल्य उत्तरीय एवं धोती तो लेते ही जायँ।' हँसकर श्रीकृष्णने कहा। इस चपलको सुदामाकी पहिनी धोती और उत्तरीयका भी लोभ है। इन्हें तो यह मस्तकपर लपेटेगा और प्राणके समान सँभालकर रखेगा। मित्रके धारण किये वस्त्र····किंतु इसके कहनेके ढंगको तो देखिये।

'अरे नहीं ! मैं दरिद्र ब्राह्मण कहाँ इनको पहिनकर अच्छा लगता हूँ।' सुदामाने अपनी मैली फटी धोती लपेटते हुए द्वारकाके वस्त्र उतारते-उतारते कहा—'चलना पैदल, माँगना भीख और ये कपड़े ! कोई दो मुट्ठी अन्न देनेवाला भी होगा तो इन वस्त्रोंको देखकर मुख चिढ़ा लेगा।'

अब सुदामाजीको कहाँ पता है कि उनके इन नटखट

मित्रने उन्हें ऐसा बना दिया है कि धनाध्यक्ष कुबेर भी उनके द्वार भिक्षा माँगे। द्वारकासे तो सुदामाको श्रीकृष्णने उसी रूपमें विदा किया, जिस रूपमें वे द्वारका आये थे। मार्गके लिये दो मुट्ठी चने भी सुदामाको नहीं दिये गये।

घर पहुँचे सुदामा। अपने ग्रामके दूर ही थे कि चौंके—'यह नगर! ये कनक-शिखर सौध! कहाँ आ गया मैं? न ग्राम है और न झोंपड़ी। वहाँ तो दूसरी द्वारका—सुदामापुरी बस चुकी थी। वह सुदामापुरी, जिसके वैभवके सम्मुख अमरावती भी कंगालकी झोंपड़ी लगे।

नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं
याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः।
पर्जन्यवत् तत्स्वयमीक्षमाणो
दाशार्हकाणामृषभः सखा मे॥
(श्रीमद्भागवत)

सुदामा नगरमें आये और अपने महासदनमें पहुँचे। सब कुछ देखा-समझा और गद्गदकण्ठ बोले—'यह सात्वत-शिरोमणि, यदुवंशविभूषण मेरा मित्र मेघोंके समान स्वयं ही आवश्यकता-पीड़ितको देख लेता है और उसे देने लगता है तो देते थकता नहीं; किंतु निश्चय अद्भुत स्वभाव है इसका। मैंने मुँह खोलकर कुछ माँगा नहीं तो इसने सामने कुछ दिया भी नहीं। इसे लगा होगा—मित्रको सामने कुछ देकर अपनेसे हीन, उपकृत बनानेकी तुच्छता नहीं करनी चाहिये। इससे मित्रको संकोच होगा। मित्रको तो यही लगना चाहिये कि मैंने दो मुट्ठी चिउरे ही सही—कृष्णको कुछ दिया ही है। भले श्याम द्वारकाधीश हो, अनन्त ऐश्वर्यका स्वामी हो, मैंने उससे कुछ लिया नहीं है।'

मित्रको संकोच होता या नहीं होता, कन्हाईको स्वयं जो महासंकोच हो रहा था। यह परम मित्रवत्सल! मित्रको उपकृत करनेका विचार ही इसे संकुचित करता है। मित्र गौरवान्वित रहे! उसका मस्तक ऊँचा रहे। मोहनको सदा यही अभीष्ट रहा है।

× × ×

प्रति उपकार करउँ का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीहनुमान्‌जीसे कहते हैं—'हनुमान्! तुम्हारे उपकारका बदला तो मैं क्या चुका सकता हूँ, मेरा मन भी संकोचके मारे तुम्हारे सामने नहीं होता। मन भी तुम्हारे सामने लज्जित—संकुचित रहता है।'

यह बात केवल हनुमान्‌जीके सम्बन्धमें नहीं है। सुरासुरजयी रावणपर विजय प्राप्त करके अयोध्या पहुँचे तो वानर-भालुओंका परिचय देते गुरुदेवसे कहते हैं—

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥

मर्यादापुरुषोत्तम झूठ नहीं बोलेंगे और वह भी अपने कुल गुरुमहर्षि वसिष्ठसे। अपने हृदयमें वे जैसा अनुभव करते हैं, वैसा कह रहे हैं—'गुरुदेव! ये सब मेरे सखा हैं। लंकाका युद्ध तो समुद्रके समान अपार था। मैं तो उसमें डूब ही गया होता; किंतु ये सब मेरे लिये जहाज बन गये। इन्होंने मुझे उस समर-सागरमें डूब जानेसे बचा लिया। विजयी तो इन्होंने बनाया मुझे।'

इन संकोचीनाथकी यह अनुभूति—यह स्वभाव है इनका। इन्होंने कुछ हित किया, कुछ कृपा की—जैसे कभी इनको लगता ही नहीं है। ये तो कृपा करके भी संकुचित ही होते हैं।

× × ×

बड़ा सुकुमार, बड़ा मनोहर, बड़ा सौम्य शील है—इन मेघसुन्दरका व्रजमें, मथुरामें, द्वारकामें और अयोध्यामें भी; किंतु लोकभयंकर नृसिंहरूपमें आप इनको क्या कहेंगे? वहाँ भी ये सौम्यशील हैं?

भले दिशाएँ नृसिंहकी हुंकृतिसे काँपती हों। भले ब्रह्मादि देवताओंके प्राण सूखते हों इन उग्रतेजाकी कराल भ्रुकुटि देखकर और भले गम्भीर गुर्राहट करके समीप आती लक्ष्मीजीको ये भगा दें; किंतु अपने स्वभावका क्या करें? स्वभाव तो वही संकोचीनाथका है।

प्रह्लादने आकर चरणोंमें मस्तक झुकाया। नृसिंहने उठाकर गोदमें बैठा लिया। दुलारा, जीभसे चाटने लगे। पुचकारा और बोले—'बेटा! बड़ा सुकुमार है तू। बहुत अत्याचार सहने पड़े तुझे। बड़ा निष्ठुर निकला मैं। बड़ी देर हुई मुझे प्रकट होनेमें। मुझे तू क्षमा कर दे!'—

क्षन्तव्यमङ्ग यदि मे समये विलम्बः।

जिसकी स्तुति भी समीप आकर करनेका साहस सुरोंमें नहीं हुआ, जिसके पदोंमें प्रणिपात करने लक्ष्मीजी नहीं आ

सकीं, वह गद्‌गद कण्ठ, साश्रुनेत्र बालक प्रह्लादसे कह रहा था—'पुत्र ! मुझे क्षमा कर दे !'

बड़ा स्नेह, बड़ा वात्सल्य ! मुखसे निकल गया—'वत्स ! माँग तो सही, क्या लेगा तू ?'

प्रह्लादने कहा—'स्वामी ! आप मुझे प्रलोभन देते हैं ? मैं कामनाओंसे पहिले ही संत्रस्त हूँ । मेरे मनमें कभी कोई कामना न उठे, यही वरदान दें आप ।'

भगवान् नृसिंह उल्लसित हो उठे—'पुत्र ! तूने अपने इस अकिंचन स्वामीकी लज्जा रख ली । नृसिंह तुझे क्या दे सकता था । त्रिभुवनका सिंहासन, त्रिलोकीका ऐश्वर्य तो तेरे पिताका ही है । वह तो तेरा स्वत्व है । मैं तुझे और क्या दे सकता हूँ ।'

'अपने श्रीचरणोंकी भक्ति दीजिये !' प्रह्लादको कहाँ इस ऐश्वर्यका लोभ था । उनको कहाँ अमरावतीके सिंहासन-पर बैठना था; किंतु यह तो उनके स्वामीका स्वभाव है कि अपने जनको सब कुछ देकर भी अनुभव करते हैं—'इसे कुछ तो नहीं दिया ।'

× × ×

आपसे धीरेसे—एकान्त सलाहकी भाँति एक बात कहूँ ?

श्रीनन्दबाबाका लाला बहुत संकोची है । इस सुकुमारसे कुछ माँगकर इसे और अधिक संकोचमें मत डालिये । आप कुछ माँगेंगे, कुछ प्रार्थना करेंगे तो बड़ा संकोच, बड़ा दुःख होगा इसे । इसे लगेगा—'मैं इतना अयोग्य—इतना प्रमत्त, इतना कृपा-कृपण हूँ कि मेरे स्वजनोंको कहना पड़ता है—प्रार्थना करनी पड़ती है ।'

इस आनन्दकन्दसे प्रमाद नहीं होता—यह आप जानते हैं । यह आपके मङ्गल-विधानमें ही लगा रहता है—यह भी आप समझते हैं । ऐसी अवस्थामें कुछ अपनी ओरसे कह-कर, माँगकर इसे संकुचित करना क्या उचित है ?

स्याम सँकोची प्रेमका ।

इसलिये इस परमसंकोचीको संकोचमें मत डालिये । इसे तो उन्मुक्त हृदयसे प्यार—आशीर्वाद दीजिये । मोहन-को निःसंकोच करेंगे तो आप जीवनमें, जगत्‌में और सर्वत्र संकोचहीन, सम्पूर्ण संतुष्ट रहेंगे—यह सर्वथा सुनिश्चित है ।

लिखा-पढ़ा कौन है ?

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

लिखा-पढ़ा कौन है ?

क्या वह, जो गुलाबके फूल-सी सुन्दर बात मोती-से अक्षरोंमें दिल कलम कर देनेवाली कलमसे रंग-बिरंगे बेलबूटेदार हाशियेके मध्य सोने-चाँदीके पानीसे लिखकर किताब-कापियाँ भरता है, कलमें तोड़ता है और उस लिखे हुएको मन-ही-मन मुग्ध होकर मुँह-ही-मुँह गुनगुनाता अथवा सस्वर गा-बजाकर झूमता-झुमाता पढ़ता है—पढ़ता-पढ़ाता रहता है ।

न, न, वह नहीं है लिखा-पढ़ा । लिखे-पढ़ेका निर्जीव चित्र भर हैं वह तो । असल लिखा-पढ़ा तो वह है, जो मर्म-भरी कामकी बातको सीधे-सादे रूपमें दृढ़ताकी कलमसे अमिट अक्षरोंमें दिलके कोरे कागजपर लिखता है—और उस लिखे हुएको, पढ़नेके दूसरे ढंगोंको धता बता, केवल आचरणके द्वारा पढ़ता है—पढ़ता-पढ़ाता रहता है, सतत एकनिष्ठतापूर्वक—आयुपर्यन्त ।

मधुर

श्रीराधा एकान्तमें एक दिन अपनी एक अन्तरङ्ग प्रिय सखीसे बातचीत कर रही थीं। बात चल रही थी मन-इन्द्रियके निग्रहपर। प्रसङ्गतः श्रीराधाने कहा—

समझ रही मैं लाभ चित्त-
इन्द्रिय-निग्रहका सहित विवेक।
रोके भी रखती हूँ इनको,
सदा सर्वदा रखकर टेक॥
मर्त्य-भोग सब असत, तुच्छ अति,
सभी नगण्य स्वर्गके भोग।
अपुनर्भवमें भी आकर्षित
हो न चित्त करता संयोग॥

'सखि! मैं चित्त और इन्द्रियोंके निग्रहका लाभ समझती हूँ और केवल (हठसे नहीं) विवेकपूर्वक सदा-सर्वदा अपनी टेकपर दृढ़ रहकर इनको रोके रखती हूँ। (विवेक ही 'वैराग्य' का जनक है) अतः मर्त्यलोकके सब भोग तो अत्यन्त तुच्छ तथा असत् लगते ही हैं, स्वर्गके सभी भोग भी मेरे लिये नगण्य हैं। यहाँतक कि मेरा मन अपुनर्भव (मोक्ष) में भी आकर्षित होकर कभी संयोग नहीं करता (मोक्षकी ओर भी कभी मन नहीं जाता)।

पर प्रिय-गुणगण, मुरली-रव कर,
देते सभी अङ्ग चञ्चल।
श्रोत्र मानते नहीं, चित्त हो
जाता विकल परम विह्वल॥
मन करता—यदि रोम-रोम हो
जाता केवल श्रोत्र-स्वरूप।
पीता वह अविरत प्रिय-गुण-गण-
मुरली-रव-रस मधुर अनूप॥

परंतु प्रियतम (श्यामसुन्दर) का गुणानुवाद तथा उनकी मुरली-ध्वनि कानोंमें पड़ते ही सभी अङ्गोंको चञ्चल कर देते हैं। कान मानते ही नहीं और चित्त (उन्हें सुनते रहनेके लिये) व्याकुल और परम विह्वल हो जाता है। उस समय मन करता है, यदि मेरे रोम-रोममें कान हो जाते—प्रत्येक रोम कर्णरूप बन जाता तो वे कान निरन्तर प्रियतमके गुणगणोंके तथा मुरली-रवके मधुर एवं अनुपम रसको ही पीते रहते।

कभी देख पाती यदि प्रियको
मनमें उठती एक तरंग।
हो जाता यदि तुरत नयनमय
मेरे तनका अँग-प्रत्यङ्ग॥
फिर तो डूबी रहती मैं उस
रूप अनन्त सिन्धुमें नित्य।
उठ जाती मायाकी सारी
मोहमयी यह हाट अनित्य॥

सखि! यदि मैं कभी प्रियतम (श्यामसुन्दर) के दर्शन कर पाती हूँ, तब तो मनमें उसी समय यह एक अनन्य कामना-तरंग जग उठती है कि तुरंत मेरे शरीरका एक-एक अङ्ग-अवयव नयनमय बन जाता, तब फिर मैं श्यामसुन्दरके उसी नित्य अनन्त रूप-सिन्धुमें ही डूबी रहती और तब यह (जगत्प्रपञ्चरूपी) मायाकी सारी मोहमयी अनित्य हाट ही उठ जाती (यह बाजार ही बंद हो जाता सदाके लिये)।

प्रियकी प्रिय इच्छासे मैं
करती यदि उनसे वार्तालाप।
मनमें आता बने तुरत,
सारा तन 'मुखमय' अपने-आप॥
करती रहूँ बात प्रियतमसे
मधुर-मधुर मैं अनियत काल।
दिव्य प्रेमरस रहूँ पिलाती-
पीती, होती रहूँ निहाल॥

'सखि! यदि प्रियतम (श्यामसुन्दर) की प्रिय इच्छासे मैं कभी उनसे बातचीत करने लगती हूँ, तब तो यह मनमें आता है कि मेरा सारा शरीर अपने आप ही तुरंत 'मुखमय' बन जाय और फिर मैं प्रियतमसे

अनिश्चित कालतक मधुर-मधुर बात ही करती रहूँ; एवं इस प्रकार उन्हें दिव्य प्रेमरस पिलाती रहूँ, स्वयं पीती रहूँ और सदा कृतार्थ होती रहूँ।'

सखिसे यों कह, ध्यानमग्न हो,
राधा मौन हुई तत्काल।
प्रकट हो गये तभी अमित
सौन्दर्य-सुधा सागर नँदलाल॥

'सखीसे इस प्रकार कहकर राधाजी अचानक तत्काल ध्यानमग्न होकर मौन हो गयीं और बस, उसी समय अपार सौन्दर्य-सुधा-सागर नन्दकुमार प्रकट हो गये।'

भगवान्‌के हाथ !

[एक सत्य घटना]

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

एक्सप्रेस ट्रेनकी खट्-खट्‌···वातावरणमें मर्मभेदी शोर, पटरियोंसे पहियेकी रगड़की तीखी ध्वनि···दौड़ती रेलगाड़ीके इंजिनसे फक्-फक् निकलता हुआ काला धुआँ !

ट्रेन बड़ी तीव्र गतिसे लोहेकी पटरियोंपर दौड़ रही थी, जैसे घनघोर अँधेरेमें शोर करती हुई भीड़-भाड़ भागी जा रही हो !

चारों ओर व्याप्त कोहरेको चीरती हुई यह एक्सप्रेस ट्रेन इंगलैंडके लंदन नगरकी ओर भागी जा रही है।

आज इस ट्रेनमें रोजानाकी अपेक्षा अत्यधिक भीड़-भाड़ है। बेहद चहल-पहल और शोरगुल है। इतने मुसाफिर तो प्रायः मेलों या उत्सवोंके अवसरोंपर ही सफर किया करते हैं। इतना 'रश' बहुत कम दिखायी देता है।

फिर आज यह भीड़भाड़ क्यों ?

इस शोरगुलका क्या कारण है ?

आज इस ट्रेनसे इंगलैंडकी लोकप्रिय महारानी विक्टोरिया भी सफर कर रही हैं। अनेक उत्सुक व्यक्ति सम्राज्ञी विक्टोरियाके पुण्य दर्शनोंके लिये स्टेशनपर जमा थे। भीड़ क्या थी, जैसे नरमुण्डोंका विशाल समुद्र हो ! असंख्य उत्सुक नेत्र इंगलैंडकी सम्राज्ञीके दर्शनोंकी उत्कण्ठा लिये भीड़में आगे आनेका प्रयत्न कर रहे थे।

प्लेटफार्मसे जब ट्रेन चली, तब अनेक दर्शक विना टिकिटकी परवाह किये ही ट्रेनमें सवार हो गये कि शायद किसी अगले स्टेशनपर सम्राज्ञीके दर्शनोंका पुण्यलाभ हो जाय ! मनुष्य भावी आशाके सुनहरे पंखोंपर व्योमविहार किया करता है !

जंगलमें चारों ओर अँधेरा !

आसपास ट्रेनके सामने लगी सर्चलाइटके अतिरिक्त चारों ओर अन्धकारकी काली चादर फैली हुई थी। कुछ न सूझता था। इंजिनड्राइवर बड़ा चौकन्ना था। वह रेलकी पटरियोंपर दृष्टि लगाये इंजिन चला रहा था। रफ्तार सबसे अधिक थी।

सहसा एक अभूतपूर्व घटना घटित हुई !

इंजिन-ड्राइवरको ऐसा लगा जैसे रेलकी लाइनके किनारे खड़ा एक लंबे कदका आदमी अपनी दोनों लंबी भुजाएँ ऊँची किये किसी भावी खतरेकी सूचना देनेके इरादेसे ट्रेनको फौरन रोक देनेका मानो यह संकेत कर रहा हो—

'रुको ड्राइवर ! ट्रेनको तुरंत यहीं खड़ा कर दो। तुम सबके लिये, ट्रेनके लिये, सम्राज्ञीके लिये आगे एक भयानक खतरा आ रहा है। यहीं ब्रेक लगाकर रोक देनेसे वह बच सकता है। ट्रेनको बिना देर किये रोको और इतने यात्रियोंके प्राणोंकी रक्षाका पुण्यलाभ लो !'—कुछ ऐसी ध्वनि उसकी अन्तरात्मामें अकस्मात् सुन पड़ी !

ड्राइवरका मन भिन्न-भिन्न विचारोंके संघर्षसे परिपूर्ण हो उठा !

यह घनघोर अन्धकार ! चारों ओर सुनसान जंगल ! यात्रियोंकी भीड़से खचाखच भरी ट्रेन ! और फिर,

इंगलैंडकी लोकप्रिय सम्राज्ञी आज इसी ट्रेनसे सफर कर रही हैं। क्या जंगलमें अचानक ट्रेन रोक देना खतरनाक न होगा ?

कोई डाकुओंका छिपा दल एकाएक आक्रमण कर सबको लूट ले! मारकाट मचा दे, तब क्या होगा ?

सम्भव है, यह कोई शरारत हो! कोई शठ मजाक ही न कर रहा हो ? और···और कोई कुटिल राजनीतिक षड्यन्त्र रच रहा हो तो ? सम्भव है राजपरिवारमें ही सम्राज्ञीका कोई विरोधी उनकी हत्याका घिनौना षड्यन्त्र कर रहा हो।

'नहीं, नहीं, यहाँ ट्रेनको रोकनेके अनेक दुष्परिणाम हो सकते हैं।' ड्राइवरने सोचा। 'एक आदमीके···सो भी गैरजिम्मेदार व्यक्तिके संकेतमात्रपर ट्रेनको नहीं रोकूँगा।'

ड्राइवर कुछ भी निर्णय नहीं कर पा रहा था। उसका मन भयसे शङ्कित था।

उसने सोचा···बार-बार विचार किया !

यह भी सम्भव है कि वास्तवमें ही आगे ट्रेनके लिये कोई संकट हो! ट्रेनके न रुकनेसे कोई दुर्घटना न हो जाय।

प्रभुका नाम ले उसने मनमें मानो वेदमन्त्रके अनुसार यह सोचा—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
···बलमसि बलं मयि धेहि, ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि, सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥
(यजुर्वेद १९ । ९)

'हे परमेश्वर! तू प्रकाशस्वरूप है। इस संकटके समय मुझे विवेकबुद्धि (निर्णयकी शक्ति) दे! तू पराक्रमवान् है, मुझे वीर्य दे। तू बल है, मुझे मनोबल दे। तू ओजस्वी है, मुझे भी ओजस्वी बना। तू दुष्टोंपर क्रोध करता है, मैं भी वैसा ही करूँ। तू सहनशील है, मुझे भी सहनशील बना!'

सच है—जो विश्वास करते हैं, परमात्मा उन्हें सद्बुद्धि देते हैं—

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥
(सामवेद १ । १ । ९)

अर्थात् परमात्मा ज्ञानियोंके हृदयमें प्रकाशरूप और मस्तिष्कमें विचाररूपमें प्रकट होता है।

यही बात यहाँ हुई!

भगवान्‌का संकेत मान उसकी अन्तरात्मामें एकाएक ट्रेनको वहीं खड़ा कर देनेकी इच्छा तीव्र हो उठी। उसे लगा कि सचमुच ही आगे ट्रेनके लिये कोई खतरा है। या तो कहीं पटरियोंमें कोई खराबी है, षड्यन्त्र है या पुल इत्यादि टूट गया है। वह सोच-विचारमें पड़ा रहा। ट्रेन रोके या यों ही भ्रम मानकर उस शङ्काको मनसे निकाल दे!

क्या निर्णय ठीक रहेगा!

अन्ततः जन-कल्याणकी भावनासे भरकर ड्राइवरने खतरा मोल ले लिया। उसने जल्दी-जल्दी ब्रेक लगाये।

कुछ दूरतक तो एक्सप्रेस ट्रेन घिसटती-घिसटती आगे खिसकती गयी, पर काफी मेहनतके बाद कोई सौ गज आगे चलकर गाड़ी एकाएक 'डेडस्टाप' हो गयी। (एकदम रुक गयी।)

रेलके यात्रियोंके झटके लगे। सब चकित हो उठे। आखिर, घनघोर अन्धकारमें, जंगलके सुनसान वातावरणमें तेज रफ्तारपर दौड़ती हुई ट्रेन एकाएक क्यों रुक गयी! क्या कोई दुर्घटना घटी है! ट्रेनका सिगनल डाउन नहीं हुआ है! या कोई छोटा-सा स्टेशन आ गया है!

यात्री खिड़कियोंसे गर्दनें बाहर निकाल-निकालकर कारण जाननेके लिये बाहर देखने लगे। कुछ लोग ट्रेनसे उतर आये। महारानी विक्टोरियाके साथ बैठे हुए अफसर भी चकित हो बाहर झाँकने लगे।

सबने देखा इंजिन-ड्राइवर और गार्ड दोनों उस दैत्याकार आदमीको खोजने और ट्रेन रुकवानेकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये गाड़ीसे उतर आये थे, वे आगे जा रहे थे।

कहाँ गया वह लंबा आदमी, जिसने ट्रेन रुकवायी थी!

उन्होंने बहुत ढूँढ़ा! बहुत आवाजें दीं! पर कहीं कोई इन्सान नजर न आया।

अब ड्राइवर अपनी जल्दबाजी और मूर्खतापर पछता रहा था। ड्राइवर और गार्ड अपनी कारगुजारीपर लज्जित-से हो रहे थे। जंगलमें मामूली संकेतमात्रपर एक्सप्रेस ट्रेनको रोककर सचमुच आज वे बड़ी मूर्खता कर बैठे थे।

कुछ लोग आगे घूमते-घूमते बढ़ गये!

कुछ उस आदमीको इधर-उधर खेतोंमें तलाश करने लगे!!

इतनेमें कोई सौ गज आगे गयी टुकड़ीवाले जोरसे चिल्लाये—

"गाड़ी मत चलाना''वहीं रुके रहो''आगे पुलिया टूटी पड़ी है···ट्रेन उसमें गिरकर नष्ट हो जायगी''बड़ी भारी दुर्घटना होने जा रही थी''अभी रुको''हम सब बतलाने भागे आ रहे हैं······।"

एक अजीब-सी स्थिति छा गयी।

लोग बेतहाशा दौड़े-दौड़े आये। कहने लगे, आगे एक पुलिया है। किसीने उसे तोड़फोड़ डाला है। यह ट्रेन अगर न रुकती, तो आज एक भयंकर दुर्घटना हो गयी होती। उस अज्ञात आदमीने अँधेरेमें ऊँची बाहोंसे सिगनल दे ट्रेनको रुकवाकर बड़े उपकारका कार्य किया है। पता नहीं, उसे पुलके टूटनेकी बात क्योंकर मालूम हो गयी और उसने रेल्वेलाइनके समीप खड़े रहकर कैसे इस ट्रेनको ऐन मौकेपर बचा दिया। ऐसे उपकारी व्यक्तिको जितना इनाम दिया जाय, थोड़ा है। उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, वही कम है।

यह खबर महारानी विक्टोरियाके पास पहुँची। उन्होंने इस प्राणदाताकी प्रतिष्ठा करनेके लिये एक बार फिर खोज करनेका आदेश दिया। नये सिरेसे उस उपकारी आदमीको फिर ढूँढ़ा गया। राज्यकी पुलिसने रेलकी लाइनके आसपासके खेतों, इलाकों और गाँवोंमें खूब तलाश किया, सब ओर घूम-घूमकर काफी पूछ-ताछ की, रुपये तथा इनामके बड़े-बड़े लालच दिये, पर वह प्राण बचानेवाला आदमी पुलिसको कहीं न मिला।

सभी उस गुप्त सहायककी भरपूर प्रशंसा कर रहे थे। लोग कह रहे थे 'अपने लिये ही जीवित रहना, अपनी ही समस्याओंकी चिन्ता करना, अपनी ही प्रसन्नता ढूँढ़ना उन लोगोंका काम है, जिनके लिये मनुष्यताका कोई मूल्य नहीं। दूसरोंका भला और समूहगत समस्याओंका ध्यान करनेवाला मनुष्य ही सच्चा मनुष्य है। सहयोगके आधारपर ही मानव-जातिने इतनी प्रगति की है। उसके भविष्यका अन्धकार-ग्रस्त या प्रकाशमान होना इसी बातपर निर्भर है कि परस्पर स्नेह, सहयोग, उदारता और सेवाकी भावनाएँ मानव-जीवनमेंसे कितनी घटती या बढ़ती जाती हैं।

वह लोकसेवी व्यक्ति चर्चाका विषय बना रहा। उसके जन-कल्याणके कार्यको बड़ा सराहा गया।

पुलकी मरम्मत होनेके बाद वह रेलगाड़ी कई दिनों बाद लंदन पहुँची।

रहस्यकी खोजबीन अभीतक जारी थी। सबको मानो नया जन्म मिला था। सभी यात्रियोंकी इच्छा थी कि उस जान बचानेवाले आदमीको परोपकारके लिये सार्वजनिक रूपसे पुरस्कृत किया जाय। सब उसे कुछ भेंट दें।

रेल्वे यार्डमें गाड़ीके आनेपर नियमानुसार जब उस ट्रेनके इंजिनकी जाँच-पड़ताल होने लगी, तब एकाएक उस दिनके रहस्यका कारण मालूम हुआ।

वह क्या था!

परमात्माकी लीला विचित्र है। उनकी सहायताके रूप असंख्य हैं।

> कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
> उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते॥
>
> (सामवेद ३००)

'(अर्थात् ईश्वरका न्याय विचित्र है) वह किसीके कर्मको निष्फल नहीं रखता, न किसी निरपराधीको दण्ड देता है। इस जन्ममें और पुनर्जन्ममें प्रत्येक मनुष्यके लिये उसने कर्मानुसार फलकी व्यवस्था कर दी है।'

उस इंजिनकी सर्चलाइटमें संयोगसे एक बरसाती कीड़ा फँस गया था। घने कोहरेमें जब वह अपने दोनों पंखोंको फड़फड़ाकर सर्चलाइटके सामने आ रहा था, तब ट्रेनके ड्राइवरको भ्रमवश उसकी मूर्ति लंबे-चौड़े शरीरवाले आदमी-जैसी लगी थी और कीड़ेके दोनों पंख आदमीके ऊँचे उठे हुए लंबे हाथ-जैसे दिखायी दिये थे।

राजके आदेशानुसार उस प्राण बचानेवाले मरे हुए कीड़ेकी प्रतिष्ठा की गयी। असंख्य मुसाफिरों और सम्राज्ञीकी प्राणरक्षा करनेके उपलक्ष्यमें उसे ब्रिटिश म्यूजियममें प्रतिष्ठित किया गया। वहाँ वह आज भी परोपकारके प्रतीकके रूपमें रक्खा हुआ है।

··· ··· ··· ··· ···

> सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
> स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
>
> (यजुर्वेद ३१। १)

अर्थात् जो परमात्मा असंख्य सिर, आँख और पाँवोंवाला है, जो पाँच स्थूल और पाँच सूक्ष्म भूतोंसे युक्त सम्पूर्ण

विश्वमें व्याप्त है, उस नित्य शुद्ध-बुद्ध और मुक्तस्वभाव परमात्माकी ही हम उपासना करें। इसीसे हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होगी।

यस्येमे हिमवन्तो महि त्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(ऋग्वेद १०। १२१। ४)

अर्थात् बर्फसे आच्छादित पर्वत, पृथ्वी और समुद्र जिसकी महिमाका गान करते हैं, चारों दिशाएँ ही जिसकी विशाल भुजाएँ हैं, उस विराट् विश्वपुरुषका हम सदैव ध्यान करते रहें। (वही हमारा सदा सहायक है।)

ईश्वर-प्राप्तिका राजमार्ग एक ही है कि उसकी सृष्टिको अधिक सुखी और सुन्दर बनानेके लिये जितना कुछ अपनेसे हो सके, उसे करनेमें प्रसन्नताका अनुभव किया जाय। अपनी सुविधाओंमें जो जितनी अधिक कटौती करके अपनेसे पिछड़े हुए लोगोंको ऊँचा उठानेमें त्याग करता है, उसे उतना ही बड़ा ईश्वरभक्त कहना चाहिये। दया, उदारता, सेवा और संयमको दैनिक जीवनमें चरितार्थ करना ही ईश्वरकी प्रसन्नताका सर्वश्रेष्ठ साधन हो सकता है।

श्रीमद्भैरवोपासना

(लेखक—डॉ० श्रीभवानीदासजी मेहरा)

भीरूणामभयप्रदो भवभयाक्रन्दस्य हेतुस्ततो
हृद्धाम्नि प्रथितश्च भीरवरुचाम्शीशोऽन्तकस्यान्तक।
भीरं त्रायति यः स्वयोगिनिवहस्तस्य प्रभुर्भैरवो
विश्वस्मिन् भरणादिकृद्विजयते विज्ञानरूपः परः॥

"जो भीरुजनोंको अभय देनेवाले तथा भवभयको मिटानेमें हेतुभूत हैं, उपासकोंके हृदय-मन्दिरमें जिनका प्राकट्य या निवास सर्वजनविदित है, जिनके शब्द और अङ्गकान्ति भयजनक हैं, उन भूतगणोंके जो स्वामी हैं, कालके भी काल हैं तथा कष्टमें पड़े हुए अपने उपासक योगियोंके समुदायकी जो शीघ्र रक्षा करनेमें समर्थ हैं, वे विज्ञानस्वरूप भगवान् भैरव प्राणियोंके भरण-पोषण आदि कर्म करते हुए विश्वमें सर्वत्र विजयी हो रहे हैं।"

विश्वके विकासका स्रोत (उद्गम-स्थान) है 'सकल-ब्रह्म' (सगुण साकार परमात्मा)। उसकी यह स्थिति सृष्टि-रचनाविषयक संकल्पके समय होती है। इससे पूर्व वह 'निष्कल ब्रह्म' (निर्गुण निराकार परमात्मा) कहलाता है। वह मन और वाणीकी पहुँचसे परे है। उसमें द्रव्य, गुण आदि छहों प्राकृत भाव-पदार्थोंका सर्वथा अभाव है। विश्वसृष्टिसे पूर्व वह नाम-रूप आदि भेदोंसे भी रहित है। वैखरी वाणीद्वारा लक्षित जो परा वाक् है तथा श्रुतिने 'सत्, चित् एवं आनन्द'—इन तीन शब्दोंद्वारा जिसके स्वरूपकी ओर संकेतमात्र किया है, वही वह 'निष्कल ब्रह्म' है। उसीका शुद्ध प्रकाश परा संवित्, पूर्णाहन्ता तथा चिति आदि शब्दोंद्वारा अभिहित किया गया है। वेदोंमें उसीका नाम रुद्र है तथा तन्त्रशास्त्रोंमें वही 'भैरव' नामसे वर्णित हुआ है।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥
(कठ० २। ३। ३)

भीषास्माद् वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चमः।
(तैत्ति० २। ८। १)

'महद्भयं वज्रमुद्यतम्'
(कठोपनिषद् २। ३। २)

इसीके भयसे अग्नि एवं सूर्य तपते हैं, इसीके भयसे इन्द्र, वायु एवं पाँचवें मृत्यु देवता अपने-अपने काममें तत्पर हैं, इसीके भयसे वायु चलती है, इसीके भयसे सूर्य उदित होता है, इसीके भयसे अग्नि, इन्द्र एवं पाँचवाँ मृत्यु—ये सब अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त हो रहे हैं।'

'उठे हुए वज्रके समान जो महान् भयस्वरूप परमात्माको जानता है।' इत्यादि श्रुतियाँ जिस सहस्रशीर्ष, महाभयंकर वेदपुरुषका वर्णन करती हैं, वही तन्त्रोंमें 'भैरव' नामसे वर्णित है। इसी वेदपुरुषका वर्णन 'रौद्र' तथा 'सौम्य' दोनों रूपोंसे वेदों तथा तन्त्रोंमें उपलब्ध है। वेदों तथा तन्त्रोंके रौद्र रूप तो प्रसिद्ध हैं, सौम्य रूपकी भी झाँकी कीजिये—

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।

(शुक्ल यजुर्वेद १६ । ४१)

अर्थात् 'मोक्ष एवं संसार दोनों ही स्वरूपवाले, संसारके सभी सुख देनेवाले, कल्याणकारी परम मङ्गलमय शिवको नमस्कार है ।'

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तथा
नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ।

(शु० य० १६ । २)

कैलास पर्वत, वेदवाणी अथवा मेघमण्डलमें विराजमान होकर प्राणियोंको सुख देनेवाले रुद्रदेव ! तुम्हारा जो शान्त (मङ्गलमय), अघोर (विषम भावसे रहित या सौम्य) तथा अपापकाशी—पुण्यफलको प्रकाशित करनेवाला शरीर है, उसी अतिशय सुख प्रदान करनेवाले शरीरसे तुम मेरी ओर देखो (मुझे सुख पहुँचानेके लिये मुझपर कृपादृष्टि करो) ।'

जिस प्रकार वेदोंमें सौम्यरूपका वर्णन है, उसी प्रकार तन्त्रोंमें भी 'शान्तः शान्तजनप्रियः प्रशान्तः शान्तिदः शंकरो विष्णुः'—इत्यादि सौम्यरूपके बोधक नाम दृष्टिगोचर होते हैं । श्रीवटुकभैरव-अष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्रके अन्तमें 'विष्णु' नाम है । पाञ्चरात्रमें भगवान् विष्णुका एक नाम 'भैरव' है ।

यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायीमें 'नमो दुन्दुभ्याय' पद आता है । बृहस्पतिके साठ संवत्सरचक्रके अन्तर्गत ५६ वें संवत्सरका नाम 'दुन्दुभि' है; जिसके अभिमानी देवता भैरव हैं । इनको विष्णुस्वरूप ही माना गया है ।

पुष्करद्वीपमासाद्य दुन्दुभिः प्लक्षसंनिधौ ।
ध्यायन् वसति निःशङ्को विष्णुं वै विश्वरूपिणम् ॥

पुष्कर द्वीपमें पहुँचकर वह दुन्दुभि प्लक्ष* के निकट विश्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान करता हुआ वहाँ निर्भय निवास करता है ।

वेदोंमें परमात्माके रौद्ररूपके लिये जो रुद्राष्टाध्यायीमें 'कालाय नमः' पद है, तन्त्रोंमें वही 'कालः कपालमाली' (वटुकभैरवाष्टोत्तरशतनाम) तथा गीतामें "कालोऽस्मि" के रूपमें बतलाया गया है । 'अस्मि' पदमें जो पूर्णाहंता है, वही भैरव है ।

'अहमात्मा गुडाकेश' 'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च' इत्यादि वाक्य कालभैरवके ही द्योतक हैं ।

वृद्धि अर्थवाले 'बृहि' धातुसे 'ब्रह्म' शब्द बना है, जिसका अर्थ बढ़ने तथा बढ़ानेवाला भी है (बृहति वर्धते, बृंहयति वर्धयति वा) । चार महावाक्योंमें *सर्वोच्च वाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' द्वारा निर्दिष्ट ब्रह्म 'सकल' स्वरूपका बोधक है । 'अहम्' तथा 'अस्मि' ये निष्कल स्वरूपके बोधक हैं ।

'अहं' शब्द 'अ' तथा 'ह' दो अक्षरोंसे †बना है । इसी 'अहं' से समस्त पदार्थ ओत-प्रोत हैं—

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः ।
हकारोऽन्त्यकला ज्ञेया विमर्शाख्या प्रकीर्तिता ॥

'अकार' सर्वप्रथम तथा 'हकार' अन्तिम वर्ण है । अकार परम प्रकाश कल्याणमय शिव है तथा हकार विमर्शाख्य कला—शक्तिस्वरूप है । ‡यही 'अहं' शब्द-ऋग्वेदान्तर्गत वागाम्भृणी सूक्तमें चौदह बार, तैत्तिरीयोपनिषद् (३ । १० । ६) में बारह बार और कठरुद्रोपनिषद् तथा गीतामें अनेक बार आया है । 'अहं' से निर्दिष्ट 'तत्' पद (तत्त्वमसि) ही तन्त्रोंमें 'परशम्भुनाथ' भैरवरूपसे वर्णित है । इनके मन्त्रोंमें 'अहमहम्' पद विशेषरूपसे विद्यमान हैं ।

'योऽसावादित्यः सोऽहमस्मि' (जो यह आदित्य है, वह मैं हूँ)—इस श्रुतिमें जो 'अहमस्मि' पद है, वह पूर्णाहंता ही भैरव है, आदित्य (सूर्य) तथा गीताके काल (कालोऽस्मि) का वर्णन वेदमें इस प्रकार है—

---

* विष्णुका आश्रय या प्रतीकस्वरूप पाकड़का वृक्ष ।

* 'अयमात्मा ब्रह्म' या 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' । 'योऽसौ सोऽहम्' । 'तत्त्वमसि' । 'अहं ब्रह्मास्मि' । —ये चार महावाक्य हैं ।

† न क्षरतीत्यक्षरम्—जिसका क्षरण (नाश) न हो, वह 'अक्षर' है ।

‡ शब्दजालमशेषं च धत्ते शंकरवल्लभा ।
अर्थस्वरूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः ॥

'समस्त शब्दसमूहको शंकरप्रिया पार्वतीने एवं अखिल अर्थस्वरूपको बालेन्दुशेखर भगवान् शंकरने धारण कर रक्खा है ।'

कालोऽश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥
(अथर्व० १९ । ५३ । १)

तन्त्रोंमें श्रीभैरवका एक नाम 'काली' है। ऋग्वेदमें इस नामका उल्लेख है, 'कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।' (ऋग्वेद १९। ५२। १) एक नाम 'विराट' है।

शतपथब्राह्मणमें कहा गया है—'दशाक्षरो वै विराट्' ये दश अक्षर भैरव-रूपोंके ही प्रतीक हैं (दश भैरवोंके नाम आगे दिये जायँगे)। गीता अध्याय १३ श्लोक १२–१७ में जिन 'अनादिमत् परं ब्रह्म' का वर्णन है, वे ही तन्त्रोंमें भैरव-रूपसे वर्णित हुए हैं। गीताका 'भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च' (सब भूत-प्राणीके सृष्टि-स्थिति-संहार करनेवाले उसीको जानना चाहिये)—यह वाक्य इसी रहस्यका संकेत करता है।

भैरव-शब्दार्थ

'भ' 'र' 'व' इन तीन अक्षरोंसे 'भैरव' शब्द बना है। योगिनी हृदयदीपिकामें श्रीअमृतानन्दनाथजीने इन्हीं तीन अक्षरोंसे 'भैरव' शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की है—'विश्वस्य भरणाद् रमणाद् वमनात् सृष्टिस्थितिसंहारकारी परशिवः।' श्रीतत्त्वनिधि तथा अन्य तन्त्रग्रन्थोंमें इन तीन अक्षरोंके ध्यानका वर्णन इस प्रकार है—

भ—

भाख्या तु श्यामला चैकवक्त्रा भद्रासने स्थिता।
उद्यद्रविनिभा धत्ते शरचापवराभयान्॥
(सिन्दूरवर्ण)

'भ' नामवाली जो भैरव-मूर्ति है, वह श्यामला है, भद्रासनपर विराजमान है तथा उदयकालिक सूर्यके समान (सिन्दूरतुल्य) उसकी कान्ति है, उसके एक मुख है और उसने चार हाथोंमें धनुष, बाण, वर तथा अभय धारण कर रखे हैं।

र—

रेफाख्या रेचिका श्यामा सिंहस्था लोहितांशुका।
पञ्चास्याष्टकरा धत्ते दक्षवामकरैस्तु सा॥
खड्गखेटाङ्कुशगदापाशशूलवराभयान्।
(श्यामवर्ण)

'रेफ' नामवाली भैरव-मूर्ति श्यामवर्ण है, वह रेचिका कही गयी है। उसके वस्त्र लाल हैं, वह सिंहकी पीठपर आरूढ़ है। उसके पाँच मुख और आठ हाथ हैं। वह अपने दाहिने एवं बायें हाथोंमें खड्ग, खेट (मूसल), अंकुश, गदा, पाश, शूल, वर एवं अभय धारण करती है।

व—

वाख्या परायणी देवी स्फटिकाभरणांशुका।
स्फुटपद्मासना धत्ते पद्मद्वयवराभयान्॥
(श्वेतवर्ण)

'व' नामवाली भैरवी शक्तिके आभूषण और वस्त्र स्फटिकके समान श्वेत हैं, वह देवी लोकोंका परम आश्रय है। विकसित कमल-पुष्प उसका आसन है। वह चार हाथोंमें क्रमशः दो कमल, वर एवं अभय धारण करती है।

सिन्दूर, श्याम तथा श्वेत वर्ण क्रमशः रजस्, तमस् तथा सत्त्वगुणोंके द्योतक हैं। तन्त्रोंमें श्रीभैरवजीके सात्त्विक, राजस तथा तामस—तीनों प्रकारके ध्यान तथा पूजाके विधान मिलते हैं। योगिनीहृदयदीपिका 'वामकेश्वर' तन्त्रके एक भागकी टीका है। इसकी तथा कुछ अन्य भाग 'नित्याषोडशिकार्णव' की टीका श्रीभासुरानन्दनाथजीने 'सेतुबन्ध' नामसे की है जिसमें उन्होंने 'भैरव' शब्दके अर्थ इस प्रकार किये हैं—

१—भैरवः 'सर्वशक्तिभरितः।' 'सर्वशक्ति' शब्दसे इच्छा, ज्ञान, क्रिया एवं वामा, ज्येष्ठा, रौद्री—ये तन्त्रवर्णित शक्तियाँ गृहीत होती हैं तथा परा, स्वाभाविकी, ज्ञान, बल, क्रिया—ये श्रुतिवर्णित शक्तियाँ लक्षित होती हैं।

२—भैरवः—भयंकरः—सर्वनियन्ता।

३—भिया सर्वान् रवयति इति भैरवः।

(भयसे सबको रुलानेवाला भैरव है)

४—उद्यमोऽन्तःपरिस्पन्दः पूर्णाहम्भावनामकः।
स एव सर्वशक्तीनां सामरस्यादशेषतः॥
विश्वतो भरितत्वेन विकल्पानां विभेदिनाम्।
अलं कवलनेनापीत्यन्वर्थोदेव भैरवः॥

वही भैरव देवगणसहित सब शक्तियोंके अन्तःपरिस्पन्दनात्मक उद्यमस्वरूप पूर्णाहंभाव नामवाले हैं, विश्वका भरण एवं बुद्धिभेदके जनक विकल्पोंका अशेषरूपसे कवलन करनेमें समर्थ होनेके कारण 'भैरव' यह अन्वर्थ नाम धारण करते हैं।

(५) भीरूणां समूहो वा 'भैरवम्' ।

(६) ललितासहस्रनामान्तर्गत 'भैरवी' नामकी टीकामें उन्होंने भैरवीका अर्थ 'परशिवस्य स्त्री भैरवी' किया है—

'विज्ञान-भैरव'में यह अर्थ है—भैर्भीमादिभिः (साधनैः) अवति इति भैरवः (भीमादि साधनसे रक्षा करनेवाला भैरव है)।

तन्त्रालोक (१ । ९६ । १००) में 'भैरव' शब्दकी निरुक्ति उपर्युक्त ही है ।

तन्त्रालोककी विवेकटीकामें भी यही अर्थ है (५।१३५) सर्वं बिभर्ति, धारयति, पुष्णाति, रचयति, अन्तर्बहिर्वा करोति–

अर्थात्–'सृष्टि-स्थिति-संहारकृत्' ।

श्रीभैरवके विविध रूप

जिस विश्वातीत अचिन्त्य अनिर्वचनीय तत्पदलक्ष्यार्थ परमात्माकी उपासना सर्वसाधारण जन-समुदायके लिये अति क्लिष्ट है, उन्हींके कल्याणार्थ परमकारुणिक परमात्माने निर्गुण होते हुए भी शंकर-पार्वती अथवा भैरव-भैरवी इस सगुणरूपद्वारा आगमशास्त्रमें अपने विविध रूपोंकी उपासनाका वर्णन किया है ।

तन्त्रोंमें श्रीभैरवके 'निष्कल' तथा 'सकल' दोनों ही रूपोंका वर्णन है । 'निष्कल' रूप वाङ्मनसागोचर, विश्वातीत, स्वप्रकाश, सर्वत्राभासशील, सर्वभरिताकार, सर्वव्यापक सत्ता पूर्णाहंभाव ही है ('अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता'—गीता ९ । २४ तथा 'अहं सर्वस्य प्रभवः'—गीता १० । ८) । 'मैं ही सब यज्ञोंका भोक्ता एवं सबका प्रभव हूँ ।' यह पूर्णाहंता ही परभैरवता है, जिसमें प्रवेश करके साधकजन 'अहं ब्रह्मास्मि' इस महावाक्यका मनन करनेके योग्य होते हैं ।'

'निष्कल'रूपका वर्णन अधिक नहीं किया जा सकता । 'सकल' रूप अप्रबुद्ध भ्रान्तमतिशील लौकिकैश्वर्यसिद्ध्याकाङ्क्षी साधकोंके लिये है । यह गन्धर्वनगर—इन्द्रजालतुल्य होते हुए भी अन्तमें उच्चतम 'निष्कलरूप'का बोध करानेमें सहायक होता है ।

येन येन हि रूपेण साधकः संस्मरेत् सदा ।
तस्य तन्मयतां याति चिन्तामणिरिवेश्वरः ॥

'साधक जिस-जिस रूपसे अपने इष्टदेवका स्मरण करता है, अकारणकरुण परमात्मा चिन्तामणिकी तरह उसके लिये उसी स्वरूपको धारण कर लेते हैं ।' वेदोंमें 'भैरव' शब्द नहीं आया है; किंतु भीमः, घनाघनः, क्षोभणः, मन्यवः आदि शब्द हैं, प्रसिद्ध पञ्चमुख (सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, ईशान) एवं अष्टमूर्ति (शर्व-क्षिति, भव-जल, रुद्र-अग्नि, उग्र-वायु, भीम-आकाश, महादेव-सोम, ईशान-सूर्य तथा पशुपति-यजमान) के नाम एवं मन्त्रमात्र हैं । ध्यान तथा पूजाविधान तन्त्रोंमें ही उपलब्ध होते हैं—'अष्टभैरव' प्रसिद्ध हैं । इनकी अपनी-अपनी शक्तियाँ हैं, जिनके साथ ही इनकी पूजा होती है ।

भैरव–असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण और संहार—ये आठ हैं ।

शक्ति–ब्राह्मी, माहेश्वरी, वैष्णवी, कौमारी, इन्द्राणी, महालक्ष्मी, वाराही, चामुण्डा—ये आठ शक्तियाँ हैं । तन्त्रभेदसे अष्टभैरव तथा उनकी शक्तियाँ निम्नाङ्कित हैं—

भैरव–रुरु, *चण्ड, कराल, संहार, भीषण, कालाग्नि, उन्मत्त, विकराल ।

शक्ति–ब्राह्मी, नारायणी, चण्डी, शाम्भवी, अपराजिता, कौमारी, वाराही, नारसिंही । 'प्रबोधचन्द्रोदय' 'राजतरङ्गिणी' तथा पुराणोंमें विद्याराज, काम, नाग, स्वच्छन्द†, लम्बित, देव, उग्र तथा विघ्न—इन अष्टभैरवोंके नाम हैं ।

श्रीशंकराचार्यजीने अष्टभैरवोंके नाम इस प्रकार लिखे हैं—

आद्यो भैरवभीषणो निगदितः श्रीकालराजः क्रमात्
श्रीसंहारकभैरवोऽप्यथ रुरुश्चोन्मत्तको भैरवः ।
क्रोधश्चण्डकपालभैरववरः श्रीभूतनाथस्ततो
ह्यष्टौ भैरवमूर्तयः प्रतिदिनं दद्युः सदा मङ्गलम् ॥

'भीषण, कालराज, संहारक, रुरु, उन्मत्तक, क्रोध, चण्डकपाल, भूतनाथ—ये आठ भैरव-मूर्तियाँ प्रतिदिन सदा-सर्वदा मङ्गल प्रदान करें ।'

उपर्युक्त समस्त अष्टभैरव नामोंके मन्त्र-ध्यान आदि

---

* मत्स्यपुराणमें चण्ड एक मेघका नाम है, जो महाप्रलयके समय विश्वको जलमग्न करता है ।

† देखिये 'स्वच्छन्दतन्त्र' जिसके आधारपर श्रीअभिनवगुप्तजीने तन्त्रालोककी रचना की है, जिसमें स्वच्छन्दभैरव तथा भैरवीका संवाद है ।

उपलब्ध नहीं होते। 'आम्नायसप्तविंशतिरहस्य'* के अन्तर्गत दक्षिणाम्नायमें निम्नाङ्कित अष्टभैरवोंके मन्त्र हैं—(१) मन्थानभैरव, (२) चक्रभैरव, (३) फट्कारभैरव, (४) एकान्तभैरव, (५) रविभैरव (पाठभेदसे रविभक्ष्यभैरव), (६) चरणभैरव, (७) नभोनिर्मलभैरव, (८) भ्रमरभास्करभैरव। इनके मन्त्र समान हैं—

इसी ग्रन्थमें दस वीर भैरवोंका मन्त्रसहित उल्लेख है—

(१) सृष्टिवीर भैरव	(६) मृत्युवीर भैरव
(२) स्थिति ,, ,,	(७) भद्र ,, ,,
(३) संहार ,, ,,	(८) परमार्क ,, ,,
(४) रक्त ,, ,,	(९) मार्तण्ड ,, ,,
(५) यम ,, ,,	(१०) कालाग्नि ,, ,,

इन सबके मन्त्र समान हैं, किंतु उपर्युक्त अष्टभैरवोंके मन्त्रोंसे भिन्न हैं; अन्य तन्त्रोंमें दस भैरव-नामोंका उल्लेख है।

(१) हेतुक भैरव	(६) कराल भैरव
(२) त्रिपुरान्तक ,,	(७) एकपाद ,,
(३) वैताल ,,	(८) भीमरूप ,,
(४) अग्निजिह्व ,,	(९) अचल ,,
(५) काल ,,	(१०) हाटकेश्वर ,,

'मार्तण्डभैरव'का ध्यान क्रोधभट्टारक श्रीमद्देशिकेन्द्र दुर्वासाजीने ललितास्तवरत्नमें दिया है—

चक्षुष्मति प्रकाशनशक्ति······समारचितकेलिम्।

माणिक्यमुकुटरम्यं वन्दे (मन्ये) मार्तण्डभैरवं हृदये।

'चक्षुष्मानोंमें पदार्थावलोकन-शक्तिप्रदानके द्वारा क्रीड़ा करनेवाले माणिक्यमय मुकुटसे रमणीय मार्तण्डस्वरूप भैरवकी मैं हृदयमें वन्दना करता हूँ।'

'तन्त्रचिन्तामणि'में ऐसा वर्णन है कि मणिमल्ल नामक दैत्यको मारनेके अवसरपर भगवान् शंकरने जो 'मल्लारि' रूप धारण किया था, वही रूप 'मार्तण्डभैरव'के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

श्रीवटुकभैरवके सात्त्विक, राजस तथा तामस—तीनों रूपोंका वर्णन अनेक तन्त्रोंमें है। 'शारदातिलक' तथा 'मेरुतन्त्र'में तीनों ध्यान भिन्न-भिन्न प्रकारसे वर्णित है, मन्त्र एक ही है, रूप-उपासनाभेदसे फल भिन्न है।

सात्त्विकं ध्यानमाख्यातमपमृत्युनिवारणम्।
आयुरारोग्यजननमपवर्गफलप्रदम्॥
राजसं ध्यानमाख्यातं धर्मकामार्थसिद्धिदम्।
तामसं शत्रुशमनं कृत्याभूतग्रहास्पदम्॥

'सात्त्विक ध्यान अपमृत्युका निवारक, आयु-आरोग्यका कारण तथा मोक्षफलका देनेवाला है। धर्म, अर्थ, कामकी सिद्धिका देनेवाला राजस ध्यान है। कृत्या-भूतग्रहादिके द्वारा शत्रुका शमन करनेवाला तामस ध्यान कहा गया है।' यह ग्रन्थ प्रकाशित है। कुछ ग्रन्थ अप्रकाशित तथा दुष्प्राप हैं, वटुकभैरव-कल्पसे एक ध्यान उद्धृत किया जाता है—

विकीर्णलोहितजटं त्रिनेत्रं रक्तविग्रहम्।
शूलं पाशं कपालं च डमरुं दधतं करैः॥
नानारूपैः पिशाचैश्च नानारूपगणैर्वृतम्।
श्वानारूढं च निर्वाणं वटुकं भैरवं भजे॥

'जिनकी लालवर्ण जटा बिखरी हुई है, जिनके तीन नेत्र हैं, रक्तविग्रह है, जो हाथोंमें क्रमशः शूल, पाश, कपाल एवं डमरू लिये हुए हैं और विविध रूपके पिशाचों तथा गणोंसे घिरे हैं, कुत्तेपर सवार हैं, उन मोक्षदायक वटुकभैरवको भजता हूँ।'

इनकी उपासनासे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं—

'आम्नाय-सप्तविंशति-रहस्य'में तीन वटुकभैरवोंके नाम तथा मन्त्र हैं—(१) स्कन्दवटुक, (२) त्रिवटुक, (३) विरंचिवटुक। इनके ध्यान पञ्चाङ्ग आदि दुष्प्राप्य हैं।

दुन्दुभि भैरवका रूप तन्त्रोंमें इस प्रकार वर्णित है—

दुन्दुभीति कृताह्वानं समस्तरिपुभैरवम्।
भैरवं श्वबरारूढं दिगम्बरमुपाश्रये॥

'जिनके दुन्दुभि—इस नामसे पुकारनेमात्रपर समस्त शत्रु भयभीत हो जाते हैं, कुत्तेपर विराजमान दिगम्बर उस भैरवका हम आश्रय—शरण ग्रहण करते हैं।'

हर एक तान्त्रिक कर्ममें दीपनाथ भैरवजीका आवाहन-पूजन दीप (ज्योति)में अनिवार्य है। इसका ध्यान है—

अतितीक्ष्ण महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥

'अत्यन्त तीखे अर्थात् भयानक सुविशालकाय महाप्रलय-कालके अग्नितुल्य हे भैरवजी! आपको नमस्कार है, आप मुझे काम करनेकी अनुमति प्रदान करें।'

* यह ग्रन्थ अभीतक अप्रकाशित है, 'कल्याण'के 'साधनाङ्क'में हमने इसका कुछ विवरण दिया था।

इनके मन्त्रमें जो 'रक्तद्वादशशक्तियुक्त' पद है, वह द्वादश आदित्योंका ही बोधक है। रक्तवर्ण श्रीसूर्यभगवान्‌का ही है, दीपक सूर्यका ही प्रतीक है। स्वर्णाकर्षण भैरवका रूप इस प्रकार है—

पीतवर्णं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं पीतवाससम्।
अक्षयस्वर्णमाणिक्यगणपूरितपात्रकम्॥
अंसाहितमहाशूलं चामरं तोमरोद्वहम्।
सततं चिन्तयेद् भक्त्या भैरवं सर्वसिद्धिदम्॥
नानाभरणशोभाढ्यमानन्दं सुखरूपिणम्।
मदोन्मत्तं सदानन्दं सर्वदेवनमस्कृतम्।
एवं ध्यायेच मन्त्रज्ञः स्वर्णाकर्षणभैरवम्॥

'जिनके वर्ण और वस्त्र पीले हैं, तीन नेत्र और चार भुजाएँ हैं, अक्षय स्वर्ण—मणि-माणिक्य आदिसे जिनका पात्र परिपूर्ण है—जो कंधेपर महाशूल, चामर, तोमर आदि धारण किये हुए हैं, ऐसे सब तरहकी सिद्धिके दाता भैरवजीका निरन्तर भक्तिपूर्वक चिन्तन करे।'

'नानाविध अलंकारोंकी शोभासे सुशोभित, सुखमय, सदा आनन्दस्वरूप, सब देवोंसे नमस्कृत, मदोन्मत्त स्वर्णाकर्षण भैरवका मन्त्रानुष्ठान करनेवाले इस प्रकार ध्यान करें। इनकी उपासनाका फल स्वर्ण-प्राप्ति है।'

'परशम्भुनाथ भैरवका ध्यान इस प्रकार है—

पूर्णाहंतास्वरूपाय तस्मै परमशम्भवे।
आनन्दताण्डवोद्दण्डपण्डिताय नमो नमः॥

'पूर्णाहंतास्वरूप आनन्ददायक, ताण्डव नृत्यके प्रकाण्ड पण्डित उस पर-शम्भुनाथ भैरवको बार-बार नमस्कार है।' इनकी उपासनाका फल सर्वोत्कृष्ट शिवज्ञानकी प्राप्ति है। 'आनन्दभैरव' तथा 'आनन्दभैरवी'का ध्यान तथा मन्त्र न्यूनाधिक रूपसे समान ही हैं।

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥
अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम्।
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम्॥
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुसलधारिणम्।
खड्गखेटकपट्टीशं मुद्गरं शूलदण्डकम्॥
विचित्रखेटकं मुण्डं वरदाभयपाणिकम्।
लोहितं देवदेवेशं भावयेत् साधकोत्तमः॥

'उत्तम साधक कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान, कोटि चन्द्रसम सुशीतल, पञ्चमुख, त्रिनेत्र, अठारह भुजावाले, सुधासिन्धुके बीच ब्रह्मकमलपर विराजमान, सर्वाभरण-सुशोभित, घण्टा एवं डमरू बजाते हुए, हाथमें कपाल-पाश-अङ्कुश-मुण्ड-गदा-मूसल-मुद्गर-भाला-त्रिशूल-दण्ड-तलवार आदि लिये हुए, अभीष्ट वर और अभयके देनेवाले रक्तवर्ण, नीलकण्ठ, वृषारूढ देवदेवेश आनन्दभैरवका ध्यान करें।'

पञ्चमकारद्वारा साधना करनेवाले साधकोंके लिये 'आनन्द-भैरव तथा आनन्दभैरवी'का ध्यान करना अनिवार्य है।

श्रीदुर्गासप्तशतीके छठे अध्यायकी अधिष्ठात्री देवी 'पद्मावती'के ध्यानमें 'सर्वज्ञेश्वरभैरव'का नाम आया है। जिस प्रकार द्वितीय महाविद्या 'तारा' बौद्धदर्शनकी अधिष्ठात्री देवी है, * उसी प्रकार 'पद्मावती' जैनदर्शनकी अधिष्ठात्री देवी है। इनका पद्मावती-सहस्रनाम उपलब्ध है। उसमें भी पार्श्वनाथ-जीके नामका उल्लेख है। सम्भवतः सर्वज्ञेश्वरभैरव ही श्रीपार्श्वनाथ हैं, इनके यन्त्रमें 'पद्मावतीसहिताय' पद आता है, जैन तन्त्रोंमें इनके विविध ध्यान तथा मन्त्र मिलते हैं। सर्वज्ञेश्वरभैरवका ध्यान तथा मन्त्र उपलब्ध नहीं हैं। 'मञ्जुघोषभैरव'के दो ध्यान तन्त्रोंमें मिलते हैं—

(१) शशधर इव शुभ्रं खड्गपुष्टाङ्गपाणिं
सुरुचिरमतिशस्तं पञ्चवर्षं कुमारम्।
पृथुतरवरदक्षं पद्मपत्रायताक्षं
कुमतिदहनदक्षं मञ्जुघोषं नमामि॥

(२) अग्रतो बालवृषभं दक्षतस्ताम्रचूडकम्।
वामे बालशृगालं पश्यन्तं भैरवं भजे॥

चन्द्रमाके समान शुभ्र, गेंडेके समान परिपुष्ट हाथ-पैर आदि अङ्गवाले, कमलदलके समान विशाल नेत्रवाले, दुर्बुद्धि-के दलनमें दक्ष, बड़े-से-बड़ा अभीष्ट वर देनेमें बद्धकक्ष, सर्वथा प्रशस्त अति मञ्जुल पञ्चवर्षीय कुमार मञ्जुघोषको नमस्कार करता हूँ।

सामने बालवृषभ, दाहिने ताम्रचूड (मुर्गा) बायें बालशृगालको देखते हुए भैरवको मैं भजता हूँ।

प्रथम ध्यानमें 'कुमतिदहनदक्षम्' यह इनके मन्त्रका अनुवाद ही है, दूसरेमें बालवृषभ, ताम्रचूड तथा बाल-शृगाल—ये तीनों ही 'घोष' करनेवाले हैं अतः 'मञ्जुघोष'

*'बौद्धदर्शनदेवताम्'—नित्योत्सव।

नाम सार्थक ही है। इनकी उपासनाका फल दूसरोंके मनकी बात जानना है, हमने यह बात एक साधकमें प्रत्यक्ष देखी है। योगवासिष्ठमें कालरात्रिसहित श्रीभैरवजीके महान् रोमाञ्चकारी अत्यद्भुत ध्यानका वर्णन है। महाप्रलयके अवसरपर ये दोनों नृत्य करते हैं—

डिम्बं डिम्बं सुडिम्बं पचपच सहसा झम्यझम्यं प्रझम्यं
नृत्यन् यः शब्दवाद्यै रचितनिजशिरःशेखरं तार्क्ष्यपक्षैः।
पूर्णं रक्तासवानां यममहिषमहाशृङ्गमादाय पाणौ
पायाद् वो विश्ववन्द्यः प्रलयमुदितया भैरवः कालरात्र्या ॥

'भगवान् विष्णुके वाहन गरुडके पंखोंसे अपना शिरोभूषण मुकुट बनाकर रक्तासवसे परिपूर्ण यमराजके भैंसेका विशाल शृङ्ग हाथमें लेकर महाप्रलयसे प्रसन्न कालरात्रिके साथ डिम-डिम, झम-झम आदि शब्द करनेवाले वाद्योंके साथ नृत्य करनेवाले विश्ववन्दनीय भैरव आपकी रक्षा करें।'

इस ध्यानमें बड़े गम्भीर अर्थ निहित हैं। महाप्रलयमें गरुडसहित भगवान् विष्णु एवं महिषसहित यमराजका संहार करके गरुडके पंखोंको भैरव भगवान्ने अपने सिरपर धारण किया और यमराजके महिषके शृङ्गमें उनके ही रक्तको आसव बनाकर भर लिया।

नेत्रतन्त्र, दशमाधिकारमें श्रीभैरव तथा 'इच्छा' शक्तिका विस्तृत ध्यान है—गीताके 'काल' (कालोऽस्मि) तथा 'इच्छा' शक्ति (अवशं प्रकृतेर्वशात्) जिसके वशमें होकर भगवान् कालको 'भैरव' नाम धारणकर पञ्चकृत्य करने ही पड़ते हैं।

भैरवरूपः कालः सृजति जगत्कारणादिकीटान्तम्।
इच्छावशेन यस्याः सा त्वं भुवनाम्बिके जयसि ॥

जिसकी इच्छाशक्तिके अधीन होकर कालभैरवरूपसे ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त चराचर जगत्का सृजन करता है, वह तू ही है। हे त्रिभुवनाम्बा! तेरी जय हो।' श्रीतत्त्वनिधिमें अष्टभैरवोंके ध्यान हैं। रुद्रयामलतन्त्रमें इन्हीं ६४ भैरवोंके नाममात्र ही हैं।

असिताङ्गो विशालाक्षो मार्तण्डो मोदकप्रियः।
स्वच्छन्दो विघ्नसंतुष्टः खेचरः सचराचरः ॥
रुरुश्च क्रोडदंष्ट्रश्च तथैव च जटाधरः।
विश्वरूपो विरूपाक्षो नानारूपधरः परः ॥
वज्रहस्तो महाकायश्चण्डश्च प्रलयान्तकः।
भूमिकम्पो नीलकण्ठो विष्णुश्च कुलपालकः ॥
मुण्डपालः कामपालः क्रोधो वै पिङ्गलेक्षणः।
अभ्ररूपो धरापालः कुटिलो मन्त्रनायकः ॥
रुद्रः पितामहाख्यश्च ह्युन्मत्तो वटुनायकः।
शंकरो भूतवेतालः त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तकः ॥
वरदः पर्वतावासः कपालः शशिभूषणः।
हस्तिचर्माम्बरधरो योगीशो ब्रह्मराक्षसः ॥
सर्वज्ञः सर्वदेवेशः सर्वभूतहृदिस्थितः।
भीषणाख्यो भयहरस्सर्वज्ञाख्यस्तथैव च ॥
कालाग्निश्च महारौद्रो दक्षिणो मुखरोऽस्थिरः।
संहारश्चातिरिक्ताङ्गः कालाग्निश्च प्रियंकरः ॥
घोरनादो विशालाक्षो योगीशो दक्षसंस्थितः।

(१) असिताङ्ग, (२) विशालाक्ष, (३) मार्तण्ड, (४) मोदकप्रिय, (५) स्वच्छन्द, (६) विघ्नसंतुष्ट, (७) खेचर, (८) सचराचर, (९) रुरु, (१०) क्रोडदंष्ट्र, (११) जटाधर, (१२) विश्वरूप, (१३) विरूपाक्ष, (१४) नानारूपधर, (१५) पर, (१६) वज्रहस्त, (१७) महाकाय, (१८) चण्ड, (१९) प्रलयान्तक, (२०) भूमिकम्प, (२१) नीलकण्ठ, (२२) विष्णु, (२३) कुलपालक, (२४) मुण्डपाल, (२५) कामपाल, (२६) क्रोध, (२७) पिङ्गलेक्षण, (२८) अभ्ररूप, (२९) धरापाल, (३०) कुटिल, (३१) मन्त्रनायक, (३२) रुद्र, (३३) पितामह, (३४) उन्मत्त, (३५) वटुनायक, (३६) शंकर, (३७) भूतवेताल, (३८) त्रिनेत्र, (३९) त्रिपुरान्तक, (४०) वरद, (४१) पर्वतावास, (४२) कपाल, (४३) शशिभूषण, (४४) हस्तिचर्माम्बरधर, (४५) योगीश, (४६) ब्रह्मराक्षस, (४७) सर्वज्ञ, (४८) सर्वदेवेश, (४९) सर्वभूतहृदिस्थित, (५०) भीषण, (५१) भयहर, (५२) सर्वज्ञ, (५३) कालाग्नि, (५४) महारौद्र, (५५) दक्षिण, (५६) मुखर, (५७) अस्थिर, (५८) संहार, (५९) अतिरिक्ताङ्ग, (६०) कालाग्नि, (६१) प्रियंकर, (६२) घोरनाद, (६३) विशालाक्ष और (६४) दक्षसंस्थितयोगीश—इन ६४ भैरवोंकी शक्तियाँ ६४ योगिनियाँ प्रसिद्ध हैं। भैरवों तथा योगिनियोंके भिन्न-भिन्न ध्यान और मन्त्र उपलब्ध नहीं हैं। शक्तिकी उपासनामें श्रीभैरवजीकी उपासना अनिवार्य है। इसके बिना शक्तिमन्त्र सिद्ध नहीं होते।

केवलं यो जपेच्छाक्तं मन्त्रं शैवं न योजयेत्।
कोटिजन्मजपेनापि न मन्त्रसिद्धिभाग्भवेत् ॥
यस्या देव्यास्तु यो देवः शिवस्तस्याः शिवो भवेत्।
तेन विद्या महादेवि कलौ सिद्ध्यति सत्वरम् ॥

(रुद्रयामल)

'जो साधक शिव-मन्त्रको छोड़कर केवल शक्तिमन्त्रका

जप करता है, उसको कोटिजन्मपर्यन्त जप करनेसे भी मन्त्र-सिद्धिकी प्राप्ति नहीं होती। जिस देवीके जो देव हैं, शिव उसके उसी रूपमें मङ्गलकारी होते हैं। हे महादेवि ! कलियुगमें उससे शक्ति-मन्त्रविद्याकी सिद्धि शीघ्र प्राप्त होती है।'

अन्यत्र भी इसी प्रकार वर्णन है—

क्रोधभैरवसंयोगाद् यक्षिण्यः सिद्धिदा यथा।
तथा विद्याः प्रसिद्ध्यन्ति पुंयोगादेव पार्वति॥

(शक्तिसङ्गमतन्त्र)

'हे पार्वति ! जिस प्रकार क्रोधभैरवके संयोगसे यक्षिणियाँ शीघ्र फलदायिनी होती हैं, उसी तरह पुंयोगसे ही शक्ति-विद्याएँ शीघ्र सिद्धिदायिनी होती हैं।'

विविध शक्तियोंके अपने-अपने भैरवरूपोंका वर्णन तन्त्रोंमें है। ब्राह्मी आदिशक्तियों तथा असिताङ्गादि भैरवोंके नाम दिये जा चुके हैं। अब दशमहाविद्याओं एवं भैरवोंके नाम रुद्रयामलतन्त्रसे उद्धृत किये जाते हैं।

कालिकाया महाकालः सुन्दर्या ललितेश्वरः।
तारायाश्च तथाक्षोभ्यश्छिन्नाया विकरालकः॥
भुवनाया महादेवो धूम्रायाः कालभैरवः।
नारायणो महालक्ष्म्या भैरव्या वटुकः स्मृतः॥
मातङ्ग्यास्तु मतङ्गः स्यादथवा स्यात् सदाशिवः।
मृत्युंजयश्च बगलाविद्यायाः परिकीर्तितः॥

दश महाविद्याएँ—

(१) कालिका
(२) सुन्दरी
(३) तारा
(४) छिन्ना
(५) भुवना
(६) धूम्रा
(७) महालक्ष्मी
(८) भैरवी
(९) मातङ्गी
(१०) बगला

उनके भैरव—

(१) महाकाल भैरव
(२) ललितेश्वर ,,
(३) अक्षोभ्य ,,
(४) विकरालक ,,
(५) महादेव ,,
(६) कालभैरव ,,
(७) नारायण भैरव
(८) वटुक ,,
(९) मतङ्ग ,, अथवा सदाशिव भैरव
(१०) मृत्युंजय ,,

ललितेश्वर, त्रिपुरभैरव, विकराल, क्रोधभैरव तथा घोर कालभैरवरूपसे अन्य तन्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं।

अन्य तन्त्रोंमें महाविद्याके 'दशभैरव' इस प्रकार हैं—

दशमहाविद्या—

(१) काली
(२) तारा
(३) त्रिपुरसुन्दरी
(४) भुवनेश्वरी
(५) धूमावती
(६) बगलामुखी (वल्गामुखी)
(७) मातङ्गी
(८) कमला
(९) छिन्नमस्ता
(१०) भैरवी

दश भैरव—

(१) कालभैरव
(२) अक्षोभ्य ,,
(३) पञ्चवक्त्ररुद्रभैरव
(४) त्र्यम्बक ,,
(५) शून्यपुरुष ,,
(६) एकवक्त्ररुद्र ,,
(७) मतङ्ग ,,
(८) सदाशिव ,,
(९) कबन्ध ,,
(१०) दक्षिणामूर्ति ,,

संगीतशास्त्रमें भैरव राग तथा भैरवी रागिनीके बड़े ही मनोहर ध्यान वर्णित हैं। भैरव राग शान्तरस-प्रधान तथा भैरवी शृङ्गार-रसप्रधान हैं। दोनोंके विविध रूप, भेद, ध्यान आदि संगीतशास्त्रमें मिलते हैं। भैरवके उपासकोंके लिये भैरव राग गाना, सुनना श्रेयस्कर माना गया है।

भैरव-भैरवीके युगल स्वरूपका ध्यान इस प्रकार है—

जपाकुसुमसंकाशौ मदघूर्णितलोचनौ।
जगतः पितरौ वन्दे भैरवीभैरवात्मकौ॥

''जपा-पुष्प-समकान्ति मदविह्वलनेत्र संसारके माता-पिता भैरवी-भैरवकी हम वन्दना करते हैं।' (क्रमशः)

अर्चनोपासनामें धूपविधि

(लेखक—श्रीपृथ्वीराज भालेराव)

भगवान्‌की पूजामें यथाशक्ति अनेक उपचार समर्पित किये जाते हैं। साधारणतः महापूजा तथा उत्सवोंमें अनेकविध पूजापद्धतिके अन्तर्गत पञ्चोपचार, षोडशोपचार, चौसठ उपचार, एक सौ आठ उपचार एवं असंख्य उपचारोंके साथ विशेष अर्चना-पूजा करनेके विधानका शास्त्रोंमें उल्लेख किया गया है। सामान्योपचार, राजोपचार तथा दिव्योपचार आदि अनेक विधियोंसे सम्पन्न होनेपर भी उन सबमें जिन उपचारोंको विशेष महत्त्व दिया गया है—वे हैं धूप, दीप तथा नैवेद्य। इनमेंसे प्रत्येक उपचारका अपना रहस्य है तथा उसके पीछे वैज्ञानिक कारण है। यहाँ प्रस्तुत विषय केवल 'धूप' उपचारतक ही सीमित होनेके कारण उसीके सम्बन्धमें संक्षेपसे विचार किया गया है।

'धूप'की विधि है—गायके गोबरके अंगारेपर विशिष्ट वस्तुओंके डालनेसे निकले हुए धूएँ तथा धूपपात्रको भगवान्‌के चारों तरफ घुमाकर रख देना। उपर्युक्त वस्तुओंमें गायका घी, गुग्गुल, चन्दनका चूरा, अगर, हल्दी, कुछ विशेष वृक्षोंकी छाल तथा राल, पत्ते, गोंद आदिका कार्य तथा हेतुके अनुसार समावेश किया जाता है। इनमें भी घी सर्वश्रेष्ठ है। अब हम शास्त्रोक्त रीतिसे की गयी धूपविधिके विभिन्न अङ्गोंके सम्बन्धमें विचार करेंगे।

'धूप' देनेका पहला सुपरिणाम है—वातावरणकी शुद्धि। विशेष पदार्थसे पैदा होनेवाले धूपके वलयमें कीटाणुओंको नाश करनेवाला (Disinfectant) विशेष गुणधर्म पर्याप्त मात्रामें रहता है। साथ ही पवित्र सुगन्धसे सारा वातावरण व्याप्त हो जानेसे मन प्रसन्न हो उठता है। इससे भौतिक शुद्धिके साथ-साथ अनायास मानसिक शान्ति भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त यदि किसी दुष्टशक्ति अथवा अनिष्टकर गणोंसे कोई व्यक्ति या वस्तु संत्रस्त हो तो उसे धूप दिखाना एक अचूक उपाय माना गया है। उसपर इस धूपविधिका दैवी परिणाम होता है। धूपमें अग्निके समान तेज तथा संहारक सामर्थ्य निहित है, परंतु उसका दुरुपयोग न करके सदुपयोग करना ही वाञ्छित है। तामसशक्तिकी प्रसन्नता एवं सत्त्व-शक्तिके निवारणमें धूपका विनियोग न करके इसके विपरीत हेयशक्तिके नाश तथा सात्त्विक शक्तिकी वृद्धि एवं प्रसन्नताके लिये इसका उपयोग करना ही सदा अभीष्ट है। सत्-शील तथा सत्प्रवृत्त उपासकोंको पवित्र मन्त्रोंका उद्घोष करते हुए भगवान्‌के सम्मुख धूप जलाना तथा उसे भगवान्‌के चारों ओर घुमाना चाहिये। धूपका दुरुपयोग करनेका विचार साधकोंसे स्वप्नमें भी अपेक्षित नहीं। धूपका सूक्ष्म परिणाम है—'भूतशुद्धि'। वेदाङ्गरूप कल्पशास्त्रमें भूशुद्धि, भूतशुद्धि तथा शान्तिकर्म आदिके विधि-विधान बहुत विस्तारके साथ वर्णित हैं। परंतु इस प्रकारके कार्य नित्यप्रति करनेकी न तो आवश्यकता है और न यह सम्भव ही है। फिर भी तात्कालिक उपायके रूपमें स्नान आदि नित्य शुद्धिकर्मके अनुसार ही गोबर लीपनेसे भूशुद्धि तथा धूप जलानेसे भूतशुद्धि आदि कार्य हो जानेसे उस विधिका लाभ अंशतः हो ही जाता है।

शास्त्रोक्त विधिसे धूप देनेकी एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उससे वस्तुओंके एक-एक अणु-परमाणुकी सम्यक् शुद्धि हो जाती है। उसका कारण भी स्पष्ट है कि गौके सभी द्रव्योंमें अशुद्ध पदार्थोंको शुद्ध करनेकी क्षमताके कारण उनका वैज्ञानिक महत्त्व है। गोबरसे लीपना, गोमूत्र छिड़कना आदि विधियाँ शुद्धिकरणके लिये प्रयुक्त की जाती हैं। गायका दूध, दही तथा घी—ये सप्त धातुओंकी शुद्धि एवं वृद्धि करनेवाले हैं। इस कारण आयुर्वेदने इनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। 'आयुर्वै घृतम्' तो वैद्यकशास्त्रका सिद्धान्त ही है—जिसका अर्थ है कि खाया हुआ घी ही रूपान्तरित होकर आयुका रूप ग्रहण करता है। अतः घी जीवनदायी तथा आयुर्वृद्धिकर द्रव्य है। स्वर्गकी अप्सरा उर्वशीने भी घीको पृथ्वीके अमृतकी संज्ञा दी है। यज्ञका आधार तथा यज्ञका प्राणरूप होनेके कारण इसकी तथा गौके इतर द्रव्योंकी महत्ता तथा पवित्रताको देखते हुए उनकी दात्री (देनेवाली) विभूतिरूपा, मातृरूपा इस गौकी शास्त्रोंद्वारा की गयी प्रशंसा सर्वथा उचित है।

अनेक औषधोंमें गव्य द्रव्योंका प्रयोग होता है तथा उनकी रोगनिवारक शक्ति सर्वविदित है। इसके अतिरिक्त भी अनेक उपयोगी गुण गव्यद्रव्योंमें है। हम गोबरके उदाहरणको ही देखें। वायुसे तरंगित धूलिकणों, रोगके कीटाणुओं और सूक्ष्म जीवाणुओंको अपनी ओर आकर्षित

करके अपनेमें मिलाकर उनके दोष या घातक तत्त्वका नाश करनेकी शक्ति गोबरमें छिपी हुई है। दूषित वातावरणके कारणभूत किसी भी प्रकारकी सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म विघटन या सड़ने (Decomposition) की क्रिया गोबरके लीपनेसे तत्काल समाप्तप्राय हो जाती है। अन्नके बासी हो जानेपर उसके सड़नेकी प्रक्रिया आरम्भ होते ही उसे रोकनेके लिये किसी रासायनिक क्रियाका उपयोग किया जाता है या उस वस्तुको नष्ट कर देना ही तद्विरोधी रासायनिक क्रिया है। उसी प्रकार सड़नेके दोषका नाश गोबरके जलसे होता है, इसी कारण गोबर एक उत्कृष्ट रसायन है। अन्नके बारीक कण भी गलने-सड़नेपर घातक हो सकते हैं, इसलिये यथासमय रसोईघर, भोजनगृह, पूजाघरको गोबरसे लीपनेकी शास्त्र-आज्ञा है। उसके विना शुद्धि नहीं होती। यह अक्षरशः सत्य है; क्योंकि गोबरसे सूक्ष्म अदृश्य तथा अभौतिक सभी दोषोंका निवारण होता है। यहाँ 'अभौतिक' शब्दका प्रयोग जान-बूझकर किया गया है। उसका कारण यह है कि जिस प्रकार रसायन शास्त्रमें पदार्थोंके गुणधर्मकी क्रिया-प्रतिक्रिया (actions and reactions) का निरीक्षण किया जाता है, उसी प्रकार भौतिक पदार्थोंसे इतर मानस, पूर्वसंस्कार तथा दैवी परमाणुओंके पारस्परिक सम्बन्धका भी सूक्ष्म बुद्धिसे निरीक्षण करनेपर एक 'दिव्य रसायन-शास्त्र' का निर्माण हो सकता है। परा अथवा दैवीसत्ता अपने आपमें पूर्ण एक जगत् ही है। उसके अन्तर्गत विभिन्न तत्त्वों और घटकों (अङ्गोपाङ्गों) का आपसमें क्रिया-प्रतिक्रियाका क्रम अबाधगतिसे चलता रहता है। इनके आन्तरिक सम्बन्धों तथा परस्पर संघर्षसे दिव्य तत्त्वोंका विघटन दूषित तथा तामस शक्तिके द्वारा सम्भव होता है। दिव्य रसायन-शास्त्र (Divine Chemistry) के अनुसार वहाँके घातक परमाणुओंका नाश अथवा उनका अच्छे परमाणुओंमें रूपान्तर एवं वृद्धि करनेका सामर्थ्य गोबरमें (गौके सभी द्रव्योंमें) है। उपर्युक्त कारणसे भौतिक तथा अभौतिक दोनों ही दृष्टियोंसे गोबर एक अप्रतिम शुद्धिकारक रसायन सिद्ध होता है।

तो भी समस्या यह है कि घरके अंदरके प्रत्येक कणसे गौके द्रव्योंका सम्पर्क कराकर उनकी शुद्धि कैसे की जाय ? गोमूत्र तरल पदार्थ होनेपर भी सर्वत्र उसका छींटा देना असम्भव है। इस उद्देश्यकी पूर्ति धूप जलानेसे हो सकती है। इस विधिमें निहित सूक्ष्म विधानको देखते हुए यह निष्कर्ष निकलना सहज है। जलते हुए गोबरके उपले तथा गौके घीका अग्निसम्पर्कसे जो धूआँ निकलता है, वह धूआँ सब जगह संचार करनेमें समर्थ तथा स्वाभाविक रूपसे सूक्ष्म कणोंसे युक्त होता है। वायुका संचार तथा प्रवेश जहाँतक हो सकता है, वहाँ उन कणोंका भी सहज प्रवेश तथा संचार हो जाता है; क्योंकि वायु धूएँका वाहक है। अग्नि तो साक्षात् 'पावक' ही है। समस्त वस्तुओंको पावन करना जिसका स्वभाव-गुण है, उसे पावक कहा जाता है। इस प्रकारके पावक, गोबर तथा गोघृतके त्रिवेणी-संगमसे जो दिव्य रसायन तैयार होता है, वह धूपका यह धूआँ है। यह धूआँ घरके कोने-कोने तथा सूक्ष्मतम स्थानोंपर पहुँचनेमें समर्थ होनेके कारण घरकी समस्त वस्तुओंको पवित्र कर देता है। इसलिये सम्यक् शुद्धिके लिये इस उपचारको अति आवश्यक माना गया है। दूध-दहीका सत्त्व घी गौके द्रव्योंमें अत्यन्त पवित्र है, परंतु सभी दृष्टियोंसे इस घीको सर्वत्र छिड़कना असम्भव होनेपर भी घीकी एक बूँद भी यदि अग्निमें डाली जाय तो वह धूएँकी तरङ्गोंमें रूपान्तरित होकर सर्वस्पर्शी हो सकती है। यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

'धूप'का सर्वाधिक प्रभावी एवं सूक्ष्म परिणाम यह होता है कि आकाशमें स्थित विषाक्त मानस-परमाणुओंका नाश हो जाता है। किसी भी प्रकारके वैकारिक अथवा वैचारिक मानसिक व्यवहार या कृतिके प्रभावशाली होनेपर उसका परिणाम यह होता है कि वैसे ही मानस-परमाणु वातावरणमें गुम्फित हो जाते हैं तथा तैरते रहते हैं। दुष्टवासना, बुरे विचार तथा हीन कल्पनाओंके परमाणुके उत्सर्जन अर्थात् व्यक्तिसे बाहर निकलनेके बाद वे परमाणु वहीं लहरियों या तरङ्गोंके रूपमें तरङ्गित रहते हैं। इसीलिये उनका नाश करनेवाले या उनपर अपना अधिकार जमानेवाले दूसरे प्रबल परमाणु अथवा संस्कार वहाँ पुनः उत्पन्न हुए बिना ये बुरे परमाणु वैसे ही आन्दोलित होते रहते हैं। केवल वैचारिक परमाणु तो घातक होते ही हैं, परंतु विचारोंका परिपाक एवं प्रत्यक्षीकरण आचार है। किसी हीन कृति या आचरणके होनेपर यह निश्चित समझना चाहिये कि उस कृतिके आधारभूत मानस-परमाणु वहाँ प्रचुर मात्रामें वर्तमान हैं। वे वहाँ रहनेवाले अन्य लोगोंके मन तथा मस्तिष्कपर अपना घातक प्रभाव डालते रहते हैं और भले तथा सज्जन लोगोंके मनको भी अपनी

विशेष विचार-तरङ्गों तथा कल्पनाओंका शिकार बनाने लगते हैं। बादमें उन लोगोंको भी आश्चर्य होने लगता है कि 'यह घटना अकारण क्यों हो गयी ?' परंतु कोई भी बात अकारण नहीं हुआ करती। सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर यह तथ्य हमारी समझमें आ सकता है। एक बार परमाणुओं-की उत्पत्ति होनेपर या तो वे उसकी क्रिया हो जानेपर अथवा व्यक्तिके दूसरी ओर चले जानेपर नष्ट हो सकते हैं, तो भी प्रभावी परमाणुओंकी तरंगें वहाँ तरंगित रहती हैं। भौतिक शास्त्रकी दृष्टिसे यह प्रक्रिया कुछ असंगत भी दिखायी दे, तो भी अतिमानस शास्त्रकी दृष्टिसे यह पूर्णतया वैज्ञानिक है। इसका अनुभव भी कई लोगोंको होता रहता है। देखिये—एक डिबियामें लहसुन तथा दूसरी डिबियामें कस्तूरी रक्खी है। कुछ समयके बाद दोनों डिबियोंकी वस्तु बाहर निकालनेपर भी उन-उन वस्तुओंकी गंध डिबियामें बनी रहती है। बादमें वह गन्ध वहाँ या तो रहती नहीं या सौम्यगंधकी किसी दूसरी वस्तुके रखनेसे वह दूर होती है, यह नितान्त स्वाभाविक है। उसी प्रकार अच्छे-बुरे प्रभावी मानस-परमाणुओंका अच्छा-बुरा परिणाम होना शास्त्रसम्मत ही माना जायगा। निष्कर्ष यह है कि बुरा स्थान कुविचारोंकी उत्पत्तिका तथा अच्छा स्थान उसके अनुकूल पवित्र विचारोंके निर्माण होनेमें कारणभूत है। इतिहास-पुराणों आदि ग्रन्थोंमें इसके सम्बन्धमें अनेक प्रमाण तथा उदाहरण देखनेको मिलते हैं। योगकी दृष्टिसे, मानस-विज्ञानके अनुसार विशेष स्थानपर हीन बनानेवाले दूषित परमाणु किसीके लिये भी घातक हैं और उपासकोंके लिये तो बहुत अधिक अनिष्टकारक है। इस प्रकारके अनिष्टकर तथा अरिष्टरूप परमाणुओं-का नाश करनेपर ही सच्चे अर्थमें स्थलशुद्धि होती है। इन परमाणुओंका नाश मुख्यरूपसे दो प्रकारसे हो सकता है। एक उदाहरणसे हम इसे स्पष्ट करेंगे कि दीवालके रंगको मिटानेके लिये या तो पहलेके रंगपर दूसरे वाञ्छित रंगकी तह चढ़ायी जाय अथवा पहला रंग खरोच डाला जाय। भवन-निर्माण-शास्त्रकी दृष्टिसे उसका वैज्ञानिक उपाय तथा क्रम यह है कि पहलेके रंगको खरोचनेके बाद उसपर दूसरा रंग कर दिया जाय। ऐसा न करनेसे कुछ समयके बाद इस दूसरे रंगकी पपड़ी निकल आती है और गिरने लगती है जिससे फिर पहलेवाला रंग बाहर झाँकने लगता है।

इसी प्रकार सत्-परमाणुओंके लेपसे अथवा धूप जलानेसे हीन परमाणुओंका नाश होता है। धूपविधिसे पहलेके अनिष्ट परमाणु वातावरणसे खँरोचकर दूर फेंक दिये जाते हैं या उनका प्रभाव नहींके तुल्य अथवा बहुत कम हो जाता है। इसलिये उपासनाके पूर्व स्थलकी शुद्धिके लिये धूप जलाना साधकोंके लिये आवश्यक है; क्योंकि जैसे पहलेके खराब रंगको खरोचकर निकाले बिना दूसरा रंग अच्छी तरह चढ़ता नहीं, वैसे ही उपासनासे निर्मित होनेवाले सत्परमाणु धूप जलाये बिना टिकाऊ नहीं रह सकते।

दूसरा दृष्टान्त यह भी है कि काँटेसे काँटा निकालनेकी नीतिके अनुसार दुर्विचारों तथा दुष्कृतियोंके संस्कारोंको सद्विचार, सद्भावना, सद्वासना, सदिच्छा तथा सत्कृतिके द्वारा प्रभावहीन बना देना चाहिये। तुलनात्मक दृष्टिसे यह उपाय अचूक है; पर इसके लिये लगातार तप करना पड़ता है। परंतु इसकी अपेक्षा भी काँटे चुभे हुए स्थानके मुखपर नीबू अथवा अन्य किसी ओषधि या रसायनका प्रयोग करनेसे अंदरका काँटा फूलकर बाहर मुँहपर आ जाता है और बादमें नाखूनकी चिमटी अथवा दूसरे काँटेसे बिना किसी कष्ट या परिश्रमके सहज निकाला जा सकता है। पहलेकी अपेक्षा (तपकी तुलनामें) धूपविधिका यह दूसरा उपाय सरल उपाय है।

सारांश यह है कि भगवान्के सम्मुख दिखाये गये धूपमें दैवी शक्तिका प्रवेश हो जाता है। वह शक्ति धूएँके वलय तथा धूपमें प्रयुक्त द्रव्योंकी सुगन्धके साथ जहाँतक वायु ले जाय, वहाँतक अपना प्रभाव डालती है। आगे जाकर कुछ अन्तरके बाद यह सुगन्ध भी क्रमशः कम होती जाती है और उसीके अनुसार उस शक्तिका प्रभाव-क्षेत्र भी कम होता जाता है। यदि अधिक दूरीतक और अधिक कालतक उस प्रभावका उपयोग करना हमें इष्ट हो तो उसीके अनुसार धूपकी मात्रा अधिक डालकर उसे अधिक समयतक प्रज्वलित रखना आवश्यक है। धूपकी इस दैवी शक्तिसे कीटाणु, जीवाणु, वातावरणको दूषित करनेवाले पदार्थ, दुष्टशक्तिका संचार, दुष्टगणोंकी वाणी, अतृप्त जीवात्माद्वारा होनेवाली पीड़ा, दूषित स्थूल तथा सूक्ष्म मानस-परमाणु तथा उनकी लहरें—इन सबका संहार किया जा सकता है। धूपोपचारसे समस्त स्थूल तथा सूक्ष्म वातावरण शुद्ध हो जाता है। तात्पर्य यह है

कि धूप देनेसे स्थलशुद्धि तथा भूतशुद्धि आदि अनेक लाभ थोड़ेसे प्रयत्नसे सहज एवं सुलभ हो जाते हैं। इस अन्तर्निहित विज्ञानको देखकर यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि देवताके अर्चनमें इस धूप-उपचारका अपना एक विशेष, महत्त्वपूर्ण तथा स्वतन्त्र स्थान है। इसलिये शास्त्रोक्त विधिका लोप करके आजकलकी प्रचलित पद्धतिमें केवल अगरबत्ती जलाकर धूप समर्पण करना सच्चे साधकोंके लिये कदापि उचित नहीं है। 'अकरणान्मन्दकरणं श्रेयः'—इस न्यायके अनुसार बिल्कुल पूजा-अर्चा ही न करनेकी अपेक्षा तो धूपके स्थानपर अगरबत्ती जलाना भी अच्छा है; क्योंकि उससे धूप-विधिकी प्रतीक तथा लाक्षणिक इस पद्धतिसे अंशतः कुछ-न-कुछ लाभ तो होता ही है। तो भी शास्त्रोक्त धूपविधिकी प्रक्रिया एवं उसके रहस्यको देखते हुए उपासकोंको यथाशक्ति उसी विशुद्ध रीतिको अपनाना चाहिये। यही श्रेयस्कर है; क्योंकि अगरबत्तीसे शुद्धिका वह कार्य कदापि नहीं होता।

चरित्र-संकट (Character Crisis)

(लेखक—श्रीरामनिरीक्षण सिंहजी, एम्० ए०, काव्यतीर्थ)

किसी भी देशपर जो बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आ सकती है, वह उस देशके बहुसंख्यक निवासियोंका चरित्र-संकट है। इतिहासके पढ़नेवाले लोग मीरजाफर तथा जयचंदके नामपर आजतक थूक फेंकते रहे हैं। आज यदि ऐसे नामोंपर थूकनेका प्रसङ्ग उपस्थित हो तो, थूकनेवालोंके मुँहमें उतना थूक नहीं पूरा हो सकेगा; क्योंकि सम्प्रति भारतवर्षमें चरित्रहीनताकी भरमार है, जैसा पहले कदाचित् ही कभी रहा हो। महाभारत-कालमें कुछ बड़े लोगोंमें चरित्रहीनताकी पराकाष्ठा हो गयी थी, जब कि राज्यके लोभसे कौरवराज दुर्योधनने अपनी कुल-वधूको भरी सभामें नग्न करनेकी धृष्टता की थी और भीष्मादि गुरुजन अनुशासन-पालनका स्वाँग रच रहे थे। उस विकराल कालमें भी इस देशमें चरित्र-हीनोंकी संख्या उतनी नहीं थी, जितनी आज है। सच तो यह है कि जब किसी देशमें चरित्रका महत्त्व जन साधारणमें घट जाता है, तभी वहाँ बाहरी लोगोंके शासनका पाप उस देशके निवासियोंके सिरपर चढ़ जाता है। मुसल्मानोंके आगमनके समयमें भारत-वर्षमें चरित्र-संकट उपस्थित हुआ था और अंग्रेजोंके आगमनके समयमें भी हिंदुओं तथा मुसल्मानोंके बीच वही रोग घर कर गया था। वास्तवमें मुसल्मानी शासनके अन्तिम दिन उनकी ऐयाशी तथा शासनमें न्याय-हीनताकी पराकाष्ठाके दिन थे। उनके द्वारा देशमें फैलायी गयी विलासिता अथच भीरुता हिंदुओंको विरासतमें मिली, जो आजतक चल रही है।

सवयस्क मताधिकारके आधारपर जिस शासनपद्धति-को देशके बुद्धिमान् नेताओंने बड़े समारोहके साथ आजसे बीस वर्ष पूर्व अपनाया था, वह आज दैवी अभिशापकी भाँति देशवासियोंको पग-पगपर पछाड़ रही है। छोटे-से-छोटे ग्रामोंसे लेकर दिल्लीतक एक भी संस्था इस पापसे अछूती नहीं है। हर बातमें वोट-की प्रथा चली हुई है। विद्याबल और तपोबलके द्वारा जिन लोगोंने इस देशकी सभ्यता एवं संस्कृतिको विश्वमें अलौकिक बनाकर रखा था, जो आज ज्ञान-विज्ञानके इस परमोत्कृष्ट युगमें भी बेजोड़ प्रमाणित हो रही है, न्यूनतर संख्याके कारण आज ये लोग पीछे ढकेले जा रहे हैं। आज इस विचारप्रवाहमें सोनेका तौल काँचके साथ किया जा रहा है। जहाँ एक-एक ऋषि-के प्रणीत धर्मग्रन्थ लाखों-करोड़ों जनोंका पथ-प्रदर्शन करते थे, अधिक संख्याके बलपर निम्नश्रेणीके लोग उन्हें योग्य स्थानोंसे बलात् च्युत कर रहे हैं। इतना ही नहीं, वह दिन दूर नहीं है जब कि उच्चवर्गके

चिन्तनशील, चरित्रवान् और त्यागी लोग सर्वथा सामाजिक तथा सार्वजनिक जीवनसे किनारे कर दिये जायँगे। तब देशकी स्थिति कैसी हो जायगी, यह अनुमानगम्य नहीं हो रहा है।

पिछले महा-चुनावके बादसे सालभरके भीतर धारा-सभाओंमें कैसा अवाञ्छनीय नग्ननृत्य हुआ है और आज भी हो रहा है, यह किसीसे छिपा नहीं है। जिन व्यक्तियोंको जनताने किसी दलके या जातिके नामपर मत देकर उन-उन सभा-समितियोंमें भेजा था, उनमेंसे बहुसंख्यक सदस्योंको कुछ अधिकारलोलुप चतुर लोगोंने लोकलाज तथा परलोकभयको तिलाञ्जलि देकर एक बार नहीं, अनेक बार दल-बदलके गर्तमें गिराने-का क्रम बना रक्खा है। इन सिद्धान्तहीन सदस्योंके ऊपर जनता थूकती नहीं अघा रही है; परंतु ये धृष्ट लोग निश्चिन्त हैं कि जाति-पाँतिका सहारा लेकर पुनः वे अगले चुनावमें वोट प्राप्त कर ही लेंगे; क्योंकि वोटका देना-लेना भडुएपनका रोजगार हो गया है और इस देशमें यह रोजगार सदा चलता रहेगा। इस शासन-पद्धतिमें देश कभी सँभलने नहीं पायेगा। दिनानुदिन इस क्रममें धोखेबाजी, घूसखोरी एवं हत्याका सिलसिला बढ़ता जायगा। यह पद्धति इस देशकी अपनी वस्तु नहीं है, पश्चिमीय देशोंकी यह निरी नकल है, जिसका बीभत्स रूपान्तर यहाँ किया जा रहा है। दुःख तो यह है कि गाँधीजी-जैसा रग-रगमें भारतीयताकी छाप रखनेवाला दूरदर्शी महापुरुष भी अन्य नेताओंके सुरमें सुर मिलाकर इस अभिशापको इस देशपर सदा-के लिये लादकर चला गया। अभी तो ऐसा कोई महापुरुष इस देशमें दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है, जिसपर सारे देशकी श्रद्धा हो और जिसकी बोलीमें इतनी शक्ति हो कि उसके कथनानुसार वर्तमान शासनपद्धतिमें देशके वास्तविक हितके अनुकूल सद्यः उलट-फेर हो जिससे फिर देशमें शान्ति विराजे, विद्यार्थियोंको बहकाने-के क्रममें अवरोध हो, स्त्रियोंके अपहरणमें रुकावट हो, बालकोंकी गुरुजनोंके प्रति श्रद्धा हो और ऐश-आराम-के लिये पैसा बटोरनेकी प्रवृत्तिसे आम जनतामें निवृत्ति हो। समाजके लोगोंमें विवाहादि अवसरोंपर सादगीका व्यवहार चल पड़े और सामाजिक जीवनमें जो कृत्रिमता घर कर गयी है, उसके स्थानमें वास्तविकताका संचार हो।

यदि वर्तमान स्थितिपर देशके बचे-खुचे विचारवान् लोगोंका अविलम्ब ध्यान नहीं गया तो विदेशियोंकी दृष्टिमें इसका स्थान कितना नीचा गिरेगा, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता है, फौजके लोगों-की कर्तव्यनिष्ठामें भी शीघ्र त्रुटि होने लगेगी। जिस वर्गके लोग फौजमें अधिकतर रहते हैं, उनके घरोंपर निम्न श्रेणीके लोगोंका अनुचितरूपसे बोलबाला होता जा रहा है, जो उनको सह्य नहीं होगा। नये समयके साथ पग बढ़ानेकी दिशामें हमें उतना ही अग्रसर होना चाहिये जिससे हमारा निजत्व नहीं मिटने पावे। अभी तो हम बेमेल खिचड़ी बनने जा रहे हैं। समयकी आवाज है कि सबको समान अधिकार मिलना चाहिये। इस आवाजमें धोखा भरा हुआ है, 'सब नर होहिं न एक समाना।' अतः सबको समान अधिकारकी बात निकम्मी है। अधिकार-वितरणमें योग्यताका विचार अवश्यमेव रखना होगा। मतदानका अधिकार एक बहुमूल्य पवित्र अधिकार है, सम्प्रति इसमें योग्यताका कोई स्थान नहीं रखा गया है—शिक्षित-अशिक्षित, साक्षर-निरक्षर, धनी-निर्धन, सती-वेश्या, चोर-साधु, दयालु-हत्यारा—सब श्रेणीके लोगोंको एक वोटका समान अधिकार दिया गया है। इनमें अधिक संख्या है निरक्षरों एवं विचारहीनोंकी। ऐसे लोगोंके वोटोंसे चुने गये सदस्य उनके मापके अनुकूल ही पाये जा रहे हैं और उनकी सदस्यतासे बनी हुई धारासभाओंको कैसा होना चाहिये, यह जनताके सामने प्रत्यक्ष है। आये दिन इन

सभाओंके बहुतेरे सदस्य बहुत थोड़े मूल्यसे बिकते रहे हैं। कितने तो 'गरीयसी जाति-गङ्गा'में डुबकी लगाते रहे हैं। उनकी दृष्टिमें चरित्रका कोई मूल्य नहीं है। वे शाम-सबेरे रंग बदलनेमें कोई बुराई नहीं मानते। उन्हें इसकी परवा नहीं है कि उनके द्वारा चुने गये मन्त्रियोंका जनतामें क्या वजन है और सरकारी नौकरों, विशेषतः धारासभाके कार्यालय-कर्मचारियोंकी दृष्टिमें उनकी कितनी प्रतिष्ठा है। ऐसे ही सदस्य लोग देशमें चरित्रहीनताका सौदा बढ़ा रहे हैं। भगवान् देशवासियोंको साहस और बल दें कि एक झटकेमें देशके ऊपर लादी गयी इस नयी बलाको दूर फेंक दें और देशहितको सर्वोपरि स्थान देकर क्षुद्र स्वार्थके दलदलसे ऊपर उठ जायँ। और अपनी सभ्यताके मूल मन्त्रको एक बार पुनः अपनायें—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

मानव-चरित्रके निर्माणमें धर्म-समन्वित शिक्षाका महत्त्व

१. बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सद ग्रंथन्हि गावा॥

दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥

२. मानव प्रभु-सृष्टिका शृङ्गार है। मनुष्य-जन्म दुर्लभ है—पुण्यविशेषसे ही प्राप्त होता है। दयालु प्रभुने मनुष्यको बुद्धियोग (यथार्थ निश्चय करनेवाला विवेक) प्रदान कर पशुतासे ऊपर उठाया है। मनुष्यको इस सृष्टिमें गौरवका स्थान दिया है। बुद्धियोगसे मनुष्य अक्षुण्ण सुखकी प्राप्ति करके अन्तमें परम गति (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है और इस तरह अपने दुर्लभ जन्मको सफल एवं सार्थक बना सकता है।

३. श्रीमनुसंहितामें महर्षि मनुने मानवकी परिभाषा इस प्रकार की है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(मनुस्मृति)

'धृति, क्षमा, दम (मनका वशमें होना), चोरी न करना, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—मानव-धर्मके ये दस लक्षण प्रतिपादित किये हैं और यह विधान किया गया है कि इन्हीं दस लक्षणोंसे युक्त मनुष्य ही मानव कहलानेका अधिकारी होगा।

४. महाराजा मनुने जिन दस लक्षणोंका उल्लेख श्रीमनुसंहितामें किया है, आप देखेंगे कि वे ही दस लक्षण हैं जो हमारे वेदों और शास्त्रोंने मानवता-प्राप्तिके लिये निर्धारित किये हैं। इससे यह भलीभाँति स्पष्ट है कि धर्म ही मानवताकी आधारशिला है। धर्मके अभावमें मानवता सम्भव नहीं।

५. (यह दस लक्षणोंवाली) 'मानवता' मनुष्य-जीवनका एक अनुष्ठान है। इसी अनुष्ठानशालामें मनुष्यको मानवताकी शिक्षा प्राप्त होती है और इसी शिक्षामें मानव-चरित्रका निर्माण होता है। यह शिक्षा मनुष्य-जीवनके बाल्यकालसे ही प्रारम्भ होती है। यह अनुष्ठानकाल जीवनकी स्वर्णसंधि है, जो जीवनमें बार-बार नहीं आती। 'मानवता' ही मनुष्यकी यथार्थ सम्पत्ति है।

६. 'सदाचार' मानवताका मूल मन्त्र है। मनुष्य भले ही साङ्ग समग्र वेदोंमें पारंगत हो; किंतु यदि वह सदाचारसम्पन्न नहीं है तो वह 'मानव' कहलानेका अधिकारी कदापि नहीं हो सकता। सदाचारके अभावमें मानवताकी कल्पनाको स्थान ही नहीं।

७. प्राचीन कालमें हमारे देशमें धार्मिक शिक्षाका साम्राज्य था। इसी धार्मिक शिक्षाके पुण्यप्रतापने हमारे देशको महान् तेजःपुञ्ज विभूतियोंसे विभूषितकर उसे 'ऋषिभूमि', 'ज्ञानभूमि' कहलानेकी गौरवशाली विश्वख्याति प्रदान की थी।

८. अंग्रेजोंके शासनकालमें पाश्चिमात्य सभ्यता तथा प्रलोभनयुक्त वैज्ञानिक आविष्कारोंके आरम्भने हमारी प्राचीन धर्मसमन्वित शिक्षापद्धतिको तिलाञ्जलि दे आधुनिक धर्मविहीन शिक्षाप्रणालीकी हमारे देशके शिक्षासिंहासनपर प्राणप्रतिष्ठा की।

९. आज मानव विज्ञानका युग देख रहा है। विज्ञानकी परम उन्नति हुई है। मनुष्यने अपने पुरुषार्थ एवं कर्मोद्यमद्वारा असाध्य-साधन कर दिखाया है। फिर भी हृदयसे वह इतना निष्ठुर, स्वार्थान्ध एवं संकीर्ण बन गया है कि उसकी सारी विद्या, बुद्धि, मनीषा एवं प्रतिभा ध्वंस एवं विनाशके कार्योंमें नियोजित हो रही है। एक ओर तो वह मनुष्य और उसकी मानवताके नामपर राजनीति, अर्थनीति एवं समाजनीतिके क्षेत्रोंमें बड़े-बड़े सिद्धान्तोंकी अवतारणा कर रहा है, मनुष्यके बन्धुत्व, स्वातन्त्र्य एवं समत्वकी घोषणा करके जनतान्त्रिक सिद्धान्तोंका ढिंढोरा पीट रहा है, दूसरी ओर वही अपनी अहम्मन्यताकी उन्मादनामें उन्मत्त होकर अपने प्रभुत्वके विस्तारके लिये महाभयंकर प्राणघातक अस्त्रोंका निर्माण एवं संचय कर रहा है।

१०. तीव्र गतिशील यातायातके साधनों तथा टेलीफोन, टेलीविजन इत्यादिके कारण दुनिया छोटी हो गयी। जो दूर था, बहुत पास आ गया। विश्व भौतिक दृष्टिसे बहुत संघटित होता गया। विश्वजीवनकी परस्पर निर्भरता दिनों-दिन बढ़ती गयी। अपने सर्वोत्तम रूपमें यह 'वामन'के विराट् होनेका नया उदाहरण है।

११. सुविधाएँ बढ़ी हैं। अंधोंके लिये स्कूल खुले हैं, बहरोंके लिये श्रवणयन्त्र उपलब्ध हैं, गरीबोंके लिये चिकित्सालय हैं, बच्चोंकी शिक्षाका रूप ही बदल गया है। अकाल, बाढ़, भूकम्प आदि प्राकृतिक आपदाओं-से लड़नेके लिये संघटित साधनोंकी खोज की जा रही है। ज्ञान समाचारपत्र, रेडियो आदि अगणित वेश धरकर घर-घर दौड़ रहा है। विनोद तथा सुविधाके साधन सुलभ किये जा रहे हैं। कदम-कदमपर सिनेमा-घर हैं, पग-पगपर होटले हैं। स्नो, पाउडर, क्रीम, नेलपालिश, लिपस्टिक इत्यादि विलासकी सामग्रियाँ घर-घर एवं चेहरे-चेहरेपर दिखायी देती हैं। टेरीलिन, नाइलोन इत्यादि बदन-बदनपर शोभा पा रहे हैं। यात्रा अधिक सुविधाजनक हो गयी है, एक देशका जनसमूह दूसरे देशोंके जनसमूहोंसे अपने देशमें रहते हुए भी मिलता है, वार्तालाप करता है, सहयोगका जीवन बिताता है और टकराता भी है।

१२. इतना होते हुए भी संसारपर मृत्युकी विभीषिका छा गयी है। जाति-जातिमें, राष्ट्र-राष्ट्रमें, मनुष्य-मनुष्यमें आज जैसी भेदबुद्धि, ईर्ष्या, द्वेष, कटुता, असहिष्णुता एवं शत्रुताकी भावना देखी जा रही है, वैसी पहले कभी नहीं देखी गयी थी। मानव-कल्याणके लिये विज्ञानके जो चमत्कारपूर्ण आविष्कार हुए हैं और हो रहे हैं, वे ही आज मनुष्यके लिये भय एवं विपत्तिके कारण बन गये हैं। इस प्रकार सभ्यताकी कल्पनातीत उन्नति एवं भोगैश्वर्यके असीम सम्भारके बीच भी मनुष्यकी आत्मा आज दयनीय दैन्यसे पीड़ित है। उसके अन्तरमें शून्य एवं हाहाकार है। मानव-जीवनके टुकड़े हो रहे हैं। मानवता करुणक्रन्दन कर रही है। मनुष्य नैतिक दृष्टिसे दिवालिया और आध्यात्मिक दृष्टिसे कंगाल बन गया है। मानवताके लिये आज चरम संकटकाल उपस्थित है। संसारके सभी देशोंके दार्शनिक, चिन्तक एवं मनीषी समाहित चित्तसे इस संकटसे परित्राण पानेके उपाय ढूँढ़ रहे हैं।

१३. इस अवस्थाके प्रतिकारके लिये सबसे पहले वर्तमान कालकी शिक्षा-दीक्षामें आमूल परिवर्तन करना होगा और मनुष्यको बताना होगा कि मानव-जीवनका लक्ष्य केवल स्थूल इन्द्रियसुख नहीं है। मनुष्य अस्थि, चर्म, मांस, मज्जा एवं रक्तका पिण्डमात्र नहीं है। वह बुद्धि-विवेकसे युक्त दिव्यभावापन्न आध्यात्मिक प्राणी है। वह अपने जीवनमें श्रेयको ग्रहण करके अपनेमें अन्तर्हित दिव्य भावको इस प्रकार विकसित एवं प्रस्फुटित कर सकता है, जिससे इस संसारमें रहते हुए भी वह अमृतत्वका अधिकारी हो सकता है। आजके जिस सर्वात्मक इहलौकिक जीवनदर्शनको ध्रुव नक्षत्र मानकर वह चल रहा है, उसीने उसकी मानसिक श्रेष्ठताको, उसकी नैतिक बुद्धि एवं विवेकको कुण्ठित कर दिया है। मनुष्यके मनकी मोड़को आज अन्य दिशामें ले जानेकी आवश्यकता है। भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं दर्शनमें मनुष्यके अमृतत्वकी, उसके महाजीवनकी जो वाणी प्रच्छन्न है, उसके रहस्यका उद्घाटन करके उसे बताना होगा कि जीवनकी सार्थकता भोगकी सहज प्रवृत्तियोंको चरितार्थ करनेमें नहीं, वरं भोग एवं त्यागकी वृत्तियोंके समन्वयमें है। त्यागके द्वारा ही भोगके आनन्दका आस्वादन किया जा सकता है। उपनिषद्का वाक्य है—

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।

'कर्मसे नहीं, संतानसे नहीं, धनसे नहीं, त्यागसे कोई-कोई

अमृतत्वको प्राप्त हुए हैं।' इसी प्रकार उपनिषद्की यह वाणी मानवताके लिये कितनी उदात्त, उच्च एवं अनुप्रेरणामयी है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्॥

'इस चल जगत्में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वरसे परिव्याप्त है। संसारका भोग त्यागसे करो। किसीके धनपर मत ललचाओ।' संसारके विभिन्न राष्ट्र यदि इस सिद्धान्तपर परस्पर सम्बन्ध स्थापित करें तो वैर-विरोध, कटुता एवं पर-श्रीलोलुपताके लिये स्थान ही नहीं रहेगा और मनुष्यको अपनी जीवनयात्रामें एक नूतन ज्ञानालोकका संधान मिलेगा। सच तो यह है कि कोई भी राज्य धर्मके उन सार्वजनिक सिद्धान्तोंकी अवहेलना करके टिक नहीं सकता, जिनका आधार मानवता है। तात्पर्य यह कि धर्मके अभावमें मानवताके दर्शन सम्भव नहीं। इसलिये हमारी शिक्षा-व्यवस्थामें धार्मिक चेतनाकी प्राणप्रतिष्ठा करना आवश्यक है। धर्मयुक्त शिक्षा ही मानवता-की निर्भ्रान्त मार्गदर्शक हो सकती है।

१४. प्रत्येक देशकी शिक्षा-व्यवस्था उस देशके देशवासियों-के आचार-विचार, रीति-रिवाज, संस्कृति एवं धार्मिक भावना-ओंके अनुकूल होनी आवश्यक है। हमारा देश अध्यात्मप्रधान देश रहा है। अध्यात्मविद्याके ही पुण्यप्रतापसे हमारे देशको समस्त विश्वमें गौरवका स्थान प्राप्त हुआ था और उसे 'ऋषिभूमि', 'ज्ञानभूमि' कहा जाता था। धर्म ही भारतीय जीवनका प्राण माना गया है। हमारे देशकी शिक्षापद्धतिमें इन्हीं दो प्रधान तत्त्वोंका अभाव है, जिससे वह हमारे देश एवं देशवासियोंके अनुकूल कदापि नहीं कही जा सकती। हमारी प्राचीन धार्मिक शिक्षामें सत्य, क्षमा, दया, प्रेम, स्नेह, करुणा, सेवा, संयम, शालीनता, त्याग आदिके पाठ पढ़ाये जाते थे, जिससे मानव-चरित्र निर्माण होता था। ये ही सद्गुण आत्माका धन, मनुष्यत्वकी सच्ची पूँजी माने गये हैं और इन्हींसे मनुष्यत्व आँका जाता है। आधुनिक शिक्षापद्धतिने इस अमूल्य सिद्धान्तको महत्त्व नहीं दिया। परिणामतः इन सद्गुणोंका लोप दिखायी देता है। भौतिक जीवनको प्राधान्य देकर आधुनिक शिक्षापद्धतिने हमारे नवयुवकोंके हृदयोंमें भोगविलास तथा स्वार्थकी भावनाएँ भर दीं। उद्यमका लोप हो गया। आलस्य तथा प्रमादने उसका स्थान ग्रहण कर लिया और अन्य त्याज्य दुर्गुणोंको जन्म दिया। इस तरह आधुनिक शिक्षा-पद्धतिमें मानवताका क्रमशः ह्रास होता गया और आज देशको यह दुर्दिन देखना पड़ा।

१५. 'गतं न शोचामि' के अनुसार आज भी समय है। अंग्रेज हमारे देशसे विदा हो गये हैं। भारतीय शिक्षाके इतिहासको देखते हुए देशके हितमें हमारा यह आद्य कर्तव्य हो जाता है कि हम अपनी शिक्षाप्रणालीमें अविलम्ब परिवर्तन करें—उसमें धार्मिक, आध्यात्मिक बीज बोयें और देशको पूर्ववत् समृद्धिशाली बना मानवताके शिखरपर पहुँचायें।

लेखकका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि वर्तमान ज्ञान-विज्ञानके जो ग्राह्य गुण हों, उन्हें त्याग दें। नहीं-नहीं, उनका भी उचित सम्मान हो। उन्हें भी योग्य स्थान दिया जाय। प्राचीन ज्ञान-विज्ञान एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञानके बीच सामञ्जस्य रखकर ऐसी आदर्श शिक्षापद्धतिका निर्माण हो, जो देशके आध्यात्मिक तथा नैतिक जीवनके विकासमें सहायक हो और देशके मानवमन्दिरको पुनः उसका प्राचीन ऐतिहासिक गौरवका स्थान प्रदान करे।

हमारे देशके ख्यातिप्राप्त शिक्षाशास्त्री प्रातःस्मरणीय महान् तपस्वी महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी महाराज-ने इसी स्तुत्य पावन प्रयोजन एवं आदर्श धार्मिक लक्ष्यको लेकर विश्वविख्यात काशी-हिंदू-विश्वविद्यालयका निर्माण किया था। भगवान् विश्वनाथकी नगरी पुण्य-भूमि काशी (वाराणसी) में पावन गङ्गातटपर स्थित यह विशाल वैभवशाली विश्वविद्यालय उस महान् आत्माकी तपस्याकी पुण्य पताका है, उस तपस्वीकी भारतको अमर भेंट है—शिक्षा-जगत्को एक अमूल्य देन है, मालवीयजी महाराजकी धर्मनिष्ठाका मूर्तिमान् प्रतीक है, जो आज समस्त भारतको महाराजकी धवल धर्मकीर्तिका मधुर संगीत सुना रहा है। इस विश्वविद्यालयके रूपमें महाराजने जो आदर्श देशके सामने उपस्थित किया था, वह केवल प्रशंसनीय एवं स्तुत्य ही नहीं, वरं अनुकरणीय भी है।

हमारे ऋषि-मुनियोंने शिक्षाकी परिभाषा इस प्रकार की है—

विद्यासे अमृतत्वकी उपलब्धि और अविद्यासे सब प्रकार-के बन्धनकी प्राप्ति होती है। अविद्याजनित पतनोन्मुख समस्त विनाशक प्रवृत्तियोंसे परिरक्षित रखते हुए विद्याजनित समस्त उन्मुखी प्रवृत्तियोंकी ओर प्रेरित करते रहनेके लिये जो

चिरकालिक सत्र है, उसीको 'शिक्षा' कहा जाता है। इस सत्रकी सफल और पूर्ण समाप्तिपर पुरुषार्थचतुष्टयकी उपलब्धि-के अनुरूप विद्याव्रत-स्नातक रूपमें उदीयमान सर्वशक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंका विकास ही भारतीय प्राचीन धर्मसमन्वित शिक्षा-का प्रयोजन रहा है। उनकी दृष्टिमें शिक्षा वह पद्धति है, जो हमारी नैसर्गिक, आन्तरिक एवं अन्तर्निहित शक्तियों एवं योग्यताओंको प्रकट करने तथा उनका अधिक-से-अधिक विकास करनेमें सहायक होती है। उनको यह भलीभाँति स्मरण था कि शिक्षा संस्कृतिके अर्थमें भी नूतन ज्ञान देनेवाली या सृष्टि करनेवाली न होकर अन्तरात्मामें सोयी हुई ज्ञानरश्मियोंको प्रबुद्ध करती है और हमें इस योग्य बनाती है कि हम उन्हें देखें, जानें और अपनी आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नतिके लिये उनका उपयोग कर सकें। जिस शिक्षा-प्रणालीमें मनुष्य भेदसे अभेदकी ओर, अनेकतासे एकताकी ओर, द्वेष-कलह-घृणासे प्रेमकी ओर, शैतान-दानव-धनकी ओरसे भगवान् मानव और शान्तिकी ओर बढ़े और भारत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावनासे ओतप्रोत होकर जडवादग्रस्त जगत्को आध्यात्मिक धरातलपर लाकर विश्वमें आर्यधर्मका स्थापन करे और—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

महर्षियोंकी इस तपःपूत वाणीसे सारे संसारमें आध्यात्मिक जीवन जाग उठे। आशुतोष भगवान् शूलपाणि शंकर भारतको इतना बल दें कि वह अपने पवित्र कर्तव्यका सम्पादन कर सके। यही हमारी दयालु प्रभुसे एकान्त करबद्ध प्रार्थना है।

अपने गाँवके चमारकी बेटीके विवाहमें ब्राह्मणोंका भात भरना

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा)

हापुड़में सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता एवं भूतपूर्व-उत्तरप्रदेश विधानपरिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल) के सदस्य माननीय-वयोवृद्ध बाबू श्रीलक्ष्मीनारायणजी बी० ए० के सभापतित्वमें एक विराट् सभा हुई थी, जिसमें भाषण हुआ था भारतके सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता संसद्सदस्य माननीय श्रीप्रकाशवीर-शास्त्रीजीका, जिसमें गांधीजीके और स्वामी दयानन्दजीके भक्त दोनों महानुभावोंने एक अन्त्यज-अग्रज-प्रेमकी महान् आश्चर्य-जनक अद्भुत सत्य घटना सुनायी थी, जिसे सुनकर सभी बड़े आश्चर्यचकित रह गये थे। जो सज्जन यह कहते हैं कि इन सनातनधर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंने चमार, भंगी आदि लोगोंपर बड़े-बड़े घोर अत्याचार किये हैं, अपने इन भारतविख्यात आर्यसमाजी और कांग्रेसी नेताके मुखसे यह सत्य घटना सुनकर क्या अब भी ऐसी बातें कहेंगे ? मैंने जहाँ यह सत्य घटना विराट्सभामें माननीय संसद्-सदस्य श्रीप्रकाशवीरजीके मुखसे सुनी है, वहाँ हमने स्वयं सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता बाबू श्रीलक्ष्मी-नारायणजीके स्थानपर जाकर उनसे सुनकर लिखी है, जो इस प्रकार है। इस सत्य घटनाको सुप्रसिद्ध संन्यासी श्रीस्वामीजी सोमतीर्थजी महाराज भी अपने सदुपदेशमें भावविभोर होकर सुनाया करते थे। माननीय श्रीप्रकाशवीर शास्त्री एम्० पी०ने अपने भाषणमें कहा—समझमें नहीं आता कि जब हजारों-लाखों वर्षोंसे हम सभी हिंदूमात्र आपसमें बड़े प्रेमसे रहते चले आये हैं और परस्पर एक दूसरेको ताऊ-चाचा, बाबा-दादी कहते चले आये हैं तथा आपसमें किसी प्रकारका भी हममें लड़ाई-झगड़ा नहीं रहा है तो आज जो हम आपसमें इस प्रकार व्यर्थके लड़ाई-झगड़े कर रहे हैं और अपनेको एक दूसरेसे पृथक् मान रहे हैं तथा एक दूसरेपर आघात कर रहे हैं, आखिर इससे क्या लाभ होगा ? हम सभी हिंदुओंके पूज्य भगवान् श्रीराम-कृष्ण थे, पर आज हमारे कुछ चमार बन्धुओंको राम-राम कहना छुड़ाकर उनसे जय भीम कहलवाया जा रहा है। मैं इनसे यह पूछता हूँ कि तुम आपसमें तो इस प्रकार लड़ते ही हो, पर यह तो जरा बताओ कि रामभगवान्ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि जो तुम राम-राम कहना छोड़कर रामकी जगह जय भीम कह रहे हो ! हम ब्राह्मणसे लेकर चमार-भंगी आदितक सब एक कैसे थे और सब परस्पर कैसे प्रेमसे रहते थे, इस सम्बन्धकी एक सत्य घटना सुनिये।

हापुड़के पास खरखौदा नामक एक ग्राम है। खरखौदा जिला मेरठमें है। एक समय था कि इस खरखौदा ग्रामकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और उस समय त्यागी बिरादरीमें वहाँके

जमीदार अपना प्रमुख स्थान रखते थे। उन दिनों एक ऐसी प्रथा थी कि गाँवके जो प्रमुख चौधरी होते थे, वे अपने सभी आसपासके गाँवोंकी मालगुजारी इकट्ठी करके उसे दिल्ली सल्तनतमें सरकारी खजानेमें पहुँचा दिया करते थे।

एक बारकी बात है कि खरखौदाके त्यागी ब्राह्मणोंने, जो उस समयके प्रमुख चौधरी तथा माने हुए जमीदार थे, अपने आसपासके गाँवोंकी मालगुजारी इकट्ठी कर ली, तो वे उस मालगुजारीके रुपये लेकर सल्तनतके खजानेमें पहुँचानेके लिये दिल्लीकी ओर रवाना हुए। उस समय आजकी भाँति मोटर, बस या रेल आदि तो थी नहीं। अधिकतर प्रायः बैलगाड़ियोंसे ही काम लिया जाता था। उन जमीदार चौधरियोंने अपने साथ खजानेकी रक्षाकी दृष्टिसे चार-पाँच बैलगाड़ियाँ लीं और बंदूकें लीं तथा वे दिल्लीके लिये चल दिये। जब वे सब लोग अपनी बैलगाड़ियोंको लेकर शाहदराके पास पहुँचे; तब उन्होंने वहाँपर सड़कके पास वृक्षोंके नीचे अपनी गाड़ियाँ थाम दीं और सोचा कि कुछ देर विश्राम करके तब आगे चलेंगे।

दैवयोगसे उस समय वहींपर सड़कके पास कुछ चमारोंके छोटे बच्चे खेल रहे थे। खरखौदा गाँवसे उनके यहाँपर कुछ भातई लोग भात लेकर गाड़ीमें आनेवाले थे। वे उनकी प्रतीक्षामें थे। उन चमारोंके बालकोंने जब इन गाड़ीवालोंको देखा और इनसे यह मालूम किया ये गाड़ियाँ खरखौदा गाँवकी हैं, तब उन बच्चोंने उनसे और ज्यादा बातें न करके यही समझ लिया कि हम जिन गाड़ियोंकी बहुत देरसे बाट देख रहे थे और तलाशमें खड़े थे, वे ही हमारे मामा भातइयोंकी ये गाड़ियाँ आ पहुँची हैं। इसलिये वे बड़े प्रसन्न हुए और झटसे दौड़े हुए अपने घरपर जाकर सबको बताया कि शहरसे बाहर खरखौदाके भातइयोंकी गाड़ियाँ आकर खड़ी हो गयी हैं। तुमलोग जाकर उन्हें घरपर लिवा लाओ। इस शुभ समाचारको सुनकर चमारोंके मोहल्लेमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी और मामा भातइयोंको लिवा लानेकी तैयारियाँ प्रारम्भ हो गयीं।

बात यह थी कि शाहदरामें खरखौदा गाँवके चमारोंकी एक लड़की विवाही थी और अब उस चमारकी लड़कीकी लड़कीका विवाह था और उस विवाहमें खरखौदा गाँवसे मामा भातइयोंके भात लेकर आनेकी बड़ी प्रतीक्षा की जा रही थी। पहले उस समय यह एक प्रथा थी और अब भी बहुत-सी जगहोंपर यह प्राचीन प्रथा चली आती है कि जब मामा भातई अपनी भानजीके लिये अपने गाँवसे भात लेकर आते हैं तो वे भातई लोग गाँवसे बाहर किसी जगहपर जाकर ठहर जाते हैं, एकदम सीधे गाँवमें नहीं आते। फिर अपने आनेकी सूचना देनेपर उनकी बहन हाथोंमें आरतेका थाल लेकर गाती-बजाती हुई बहुत-सी अन्य स्त्रियोंके साथ वहाँ जाती है और उन भातइयोंका आरती कर, रोलीका तिलक लगाकर उन्हें बड़े मान-सम्मानके साथ गाँवमें लाया जाता है।

अब जब उन बच्चोंने यहाँपर जाकर यह कह दिया कि खरखौदासे मामा भातइयोंकी गाड़ियाँ आकर खड़ी हो गयी हैं तो उन्होंने उनकी यह बात बिल्कुल सत्य मान ली और सब चमारिनें अपने हाथोंमें आरतेका थाल लेकर बड़े जोर-शोरसे गाती-बजाती सड़ककी ओर भातइयोंके स्वागतार्थ अपने घरपर लानेके लिये चल दीं।

जब उन जमीदार चौधरियोंने सामनेसे बहुत-सी स्त्रियोंको इस प्रकार अपने हाथोंमें थाल लेकर दीपक जलाये और जोर-शोरसे गाती-बजाती हुई आते देखा, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि हमारे पास इस प्रकार बहुत-सी स्त्रियाँ गाती-बजाती हुई क्यों आ रही हैं और यह सब क्या हो रहा है।

जब वे सब स्त्रियाँ उनके पासमें आ गयीं और उन्होंने देखा कि ये गाड़ियाँ हमारे मामा-भातइयोंकी नहीं हैं, ये तो कोई दूसरे लोग हैं, तब उन्हें बड़ी लज्जा आयी, उनकी सारी प्रसन्नता जाती रही और उनके चेहरेपर उदासी छा गयी।

चौधरीसाहबने जब उन चमारिनोंसे इस प्रकार बड़ी धूम-धामसे गाती-बजाती हुई आनेका कारण पूछा, तब उन चमारिनोंने चौधरीसे इसको बताया कि हम सब गाती-बजाती हुई इस लिये यहाँपर आयी हैं कि आज हमारी लड़कीका विवाह है और शाहदरामें खरखौदा गाँवके चमारकी लड़की विवाही है। इसलिये खरखौदासे आज हमारे भातई भात लेकर आनेवाले हैं। हमारे बच्चोंने भूलसे आपलोगोंको ही भातई समझकर हमें जल्दीसे यहाँपर भेज दिया है। अब हम लौटे जाती हैं।

जब चौधरीसाहबने उन चमारिनोंके मुखसे यह सुना कि खरखौदा गाँवके चमारकी लड़की शाहदरामें विवाही है,

और खरखौदासे भात आनेकी प्रतीक्षा की जा रही है, तब फिर क्या था, झटसे उन्होंने उनसे कहा कि 'ठहरो, वापस मत लौटो ।' और अपने मनमें यह विचार किया कि जब यह खरखौदा गाँवकी बेटी है और हम उसी खरखौदा गाँवके रहनेवाले हैं तो फिर क्या गाँवके रिश्तेसे यह हमारी अपनी बेटी नहीं हुई और जब यह भातइयोंके भात लानेकी प्रतीक्षामें है तो क्या हम खरखौदाके रहनेवाले इसके भाई नहीं हैं और भात भरना क्या हमारा कर्तव्य या धर्म नहीं है ? क्या हमारे होते हुए ये इस प्रकार निराश होकर लौटेंगी ? यदि आज बिना भात आये विवाह हुआ तो इसमें क्या हमारे गाँवकी बदनामी नहीं है ?' उन्होंने आपसमें परामर्श किया तो सबने यही कहा कि 'यह हमारे खरखौदा गाँवकी बेटी है और यदि भात नहीं भरा गया तो हमारे गाँवका नाम बदनाम होगा । इसलिये अपने गाँवकी बेटीको अपनी बेटी मानकर उसका भात करना हमारा परम कर्तव्य है ।' यह निश्चय करके उन चौधरीसाहबने उन चमारिनोंसे कहा कि 'तुम अब घबराओ नहीं, जब तुम हमें अपना भातई मानकर आयी हो तो हम तुम्हारा भात भरेंगे और तुम्हें खाली हाथों निराश नहीं लौटने देंगे । हम भी खरखौदा गाँवके रहनेवाले हैं और खरखौदाकी बेटी हमारी अपनी बेटी है । हम भातई हैं और हम तुम्हारे साथ भात लेकर चलते हैं ।' चमारिनें यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गयीं और उनकी प्रसन्नताका वारापार नहीं रहा । चौधरीसाहब कोई आजकी भाँति पथभ्रष्ट सर्वभक्षी होटल-पंथी, बोतल-पंथी तो थे नहीं कि जो उन चमारोंके घरका खाते-पीते या जिसे अपनी बेटी मानकर भात दे रहे हैं, उसके घरका खाकर अपना आचार भ्रष्ट करते ! चौधरीसाहब भातई बन गये और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके साथ हो लिये और वे चमारिनें गाती-बजाती उन्हें अपने घरपर लिवा ले गयीं । जिस समय इन चौधरीसाहबके चमारके यहाँपर भातई बनकर भात भरनेके लिये आनेका समाचार जनताको मालूम हुआ, तब जनता इस अद्भुत घटनाको देखनेके लिये टूट पड़ी और सारा गाँव इस अद्भुत दृश्यको देखनेके लिये उमड़ पड़ा । भात भी कोई मामूली थोड़े ही था; जिसकी कभी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की जा सकती, वह भात था । चौधरीसाहबने दिल खोलकर और गाँवके चमारकी बेटीको अपनी बेटी मानकर जितने भी रुपये वे मालगुजारीके खजानेमें दाखिल करानेके लिये ले जा रहे थे, सब भातमें दे डाले । इस ब्राह्मण-चमारके अद्भुत प्रेमको देखकर और इस प्रकार हजारों रुपये भातमें आये देखकर सारे गाँवमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी और सभी लोग चौधरीसाहबकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे । बच्चे-बच्चेकी जबानपर इस भातकी चर्चा सुनायी देने लगी ।

चौधरीसाहब भात देकर अपने स्थानपर वापस लौट आये । चौधरीसाहबने अपना सारा रुपया तो अपनी चमारकी बेटीके विवाहमें भातमें दे डाला था और अब सल्तनतको रुपया कहाँसे दिया जाय, यह समस्या उनके सामने आयी ! आपसमें विचार-विनिमय हुआ और यह निश्चय हुआ कि यहाँसे दिल्ली जाकर सरकारसे रुपया दाखिल करनेके लिये कुछ दिनोंकी मोहलत ले ली जाय और फिर दिल्लीसे लौटकर गाँवमें जाकर और गाँवसे रुपये लाकर रुपये दाखिल किये जायँ ।

चौधरीसाहब दिल्ली जा पहुँचे और उन्होंने वहाँपर जाकर वजीरको अपनी सारी बातें आद्योपान्त सुना डालीं और उसे बताया कि हम मालगुजारीका सब रुपया अपने साथ लाये थे, पर चमारकी लड़की जो हमारे गाँवकी बेटी थी और गाँवके रिश्तेसे हमारी भी बेटी लगती थी, हमने उसके भातमें सब रुपये दे डाले हैं । इसलिये हमें पुनः गाँव जाकर रुपया लाकर दाखिल करनेके लिये कुछ दिनोंकी मोहलत दी जाय, जिससे हमलोग गाँव जाकर रुपया लाकर खजानेमें दाखिल कर सकें ।

वजीरने चौधरीसाहबके मुखसे यह बात सुनी तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने कहा कि चौधरीसाहब ! मैं आपकी यह बात बादशाहके सामने पेश करूँगा और फिर वे जितने दिनोंकी आपको रुपया दाखिल करनेकी मोहलत देंगे, आपको बता दूँगा ।

वजीरने बादशाहको सारी घटना आद्योपान्त कह सुनायी और मोहलत देनेकी बात उनके सामने रक्खी । बादशाहने कहा कि 'चौधरीसाहबको हमारे सामने पेश किया जाय ।' चौधरीसाहबको बादशाहके सामने पेश किया गया तो बादशाह चौधरी साहबके इस प्रकार चमारकी बेटीको अपनी बेटी मानकर मालगुजारीके लिये लाये गये सारे रुपये भातमें दे डालनेपर उनसे नाराज नहीं हुए बल्कि उल्टे बड़े प्रसन्न हुए । उन्हें इस बातसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि हमारी सल्तनतमें ऐसे आदमी भी मौजूद हैं कि जो एक चमारकी बेटीको भी

अपनी बेटी समझकर उसे अपना सारा रुपया लुटा सकते हैं।

बादशाहने चौधरीसाहबसे कहा कि 'चौधरीसाहब ! इस रुपयेको जो तुमने चमारकी बेटीके विवाहमें दे डाला है, अब तुम्हें दुबारा यहाँपर लानेकी और खजानेमें दाखिल करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह भात जो तुम अपनी ओरसे दे करके आये हो, यह हमारी ओरसे या सल्तनतकी ओरसे दिया हुआ मान लिया गया है।'

देखा पाठको ! यह था ब्राह्मण-चमार-भंगी आदि सभी हिंदूमात्रका कभी आपसका अद्भुत विलक्षण प्रेम, जो आज इन कुछ लोगोंके द्वारा जड-मूलसे समाप्त किया जा रहा है। हमने ब्राह्मण-चमार-प्रेमकी यह अद्भुत आश्चर्यजनक सत्य घटना कट्टर गांधी-भक्त बाबू श्रीलक्ष्मीनारायणजी बी० ए०के द्वारा और कट्टर आर्यनेता माननीय श्रीप्रकाशवीरशास्त्री एम्० पी०के द्वारा सुनायी हुई सामने रक्खी है। क्या अब भी कोई यह कहेंगे कि सनातनधर्मी चमार-भंगियों आदिपर अत्याचार करते थे। या यह कहेंगे कि सनातनधर्मी उन्हें अपने प्राणोंसे भी प्यारा समझकर उनसे प्यार करते थे।

बोलो सनातनधर्मकी जय !

मांस-त्याग और अहिंसासे ही सुख-समृद्धि और श्रेष्ठ स्वास्थ्यकी वृद्धि

(लेखक—वैद्य श्रीप्रकाशचन्दजी पांड्या)

इस समय देशमें अन्नकी समस्या सबसे जटिल समस्या है। इसके निराकरणके लिये सरकार अधिक अन्न पैदा करनेवाले साधन जुटाकर और अधिक अन्न पैदाकर इस समस्याको हल करनेका यत्न कर रही है। जो मांस, मछली या अंडेका उपयोग करते हैं या कर सकते हैं, उनको अधिक रूपमें इनका उपयोग करनेके लिये प्रोत्साहित कर रही है—यह सोचकर कि अन्नकी समस्यामें थोड़ी सहायता सरकारको मिल सके।

मांस किसी भी जीवकी हत्या करनेपर प्राप्त होता है। मुख्यतया गाय, बैल, भेड़, बकरी, सुअर और मुर्गी तथा कहीं-कहीं भैंस और घोड़ेका मांस उपयोगमें लिया जाता है। जो पशु जहाँ सुगमतासे मिलते हैं, वहाँ उन्हींका मांस भोजनके काममें लिया जाता है। मछली और अंडे तो आजकल प्रायः सभी जगह उपलब्ध होने लगे हैं और इनका उपयोग दिन-प्रति-दिन तीव्रगतिसे बढ़ रहा है। शाकाहारी इसका विरोध करते हैं और मांसाहारियोंको अपराधी और पापी कहते हैं। उधर मांसाहारी भी शाकाहारको दीनों, दरिद्रों और निर्बलोंका भोजन बताकर मांसाहारको शक्तिशाली भोजन करार देते हैं। दोनों ही एक दूसरेकी आलोचना करते हैं, किंतु आजका युग तर्कप्रधान है। जो अधिक तार्किक युक्तियोंसे अपने पक्षको प्रबल बनाये—वही सही माना जाता है। अतः मांसके उपयोगको कभी सही नहीं कहा जा सकता।

मांसके सम्बन्धमें ऐसा कहा जाता है कि पकानेपर मांस पचनेमें भारी हो जाता है और यदि उसे बिना पकाये खाया जाय तो उसमें जीवाणु होते हैं। वे पेटमें जाकर कुछ दिनोंमें अपना स्थान बना लेते हैं। पकानेपर वे जीवाणु नष्ट अवश्य हो जाते हैं किंतु उनका विष नष्ट नहीं होता। यदि मांसको ठीक तरह पकाकर उपयोग नहीं किया गया तो उनके कोषक (Cysticcree) पेटमें चले जाते हैं और आँतोंमें डेरा जमा लेते हैं। ये सब स्फीतकृमि (Tapeworm) के प्रकार हैं। इसीसे उपान्त्रप्रदाह होता है।

डा० त्रिलोकीनाथने 'हमारे शरीरकी रचना' पृ० ३९९, भाग २ में लिखा है कि उपान्त्र-प्रदाह मांसाहारियोंमें ही होता है। ....यूरोप और अमेरिकामें इसके प्रदाहके कारण सहस्रों व्यक्तियोंको पेट चाक कराना पड़ता है। इन लोगोंमें आमाशय और पक्वाशयके जख्म भी बहुत होते हैं और कैंसर-जैसे भयंकर रोग हो जाते हैं, जिनके होनेपर मृत्युका ग्रास ही बनना पड़ता है।

मांसाहारियोंमें तामस प्रवृत्ति पायी जाती है तथा इसका लड़ाकू जातियोंमें विशेषरूपसे प्रचार है। किंतु मानसिक कार्य करनेवालोंके लिये मांसाहार उत्तम भोजन नहीं है। मांसाहारमें रोग उत्पन्न कर देनेवाले कीटाणु अधिक पाये जाते हैं। इसीलिये मांसाहारी अधिक संख्यामें रोगी मिलते हैं।[1] यह भी ठीक नहीं है कि सैनिकों आदि (लड़ाकू लोगों)

१. आहार और आरोग्य पृ० २०३-२०४

को मांस मिलना ही चाहिये। गत महायुद्धमें अंग्रेज और अमेरिकन सैनिकके समकक्ष भारतीय सैनिक अधिक सहनशील और शक्तिमान् सिद्ध हुए। सन् ६५में भारत और पाकिस्तान-के युद्धमें भी भारतीय सैनिकोंने अपने पास उत्तम कोटिके हथियार न होते हुए भी पाकिस्तानके सैनिकोंको बुरी तरह हराया। बाबरकी फौजमें जबतक मांस-मदिराका बाहुल्य रहा, वह राजपूतोंके सामने हीन ही प्रमाणित हुई; क्योंकि मद्य-मांस मनुष्यकी मानसिक शक्तिको कमजोर कर देता है और शारीरिक शक्तिके साथ युद्धमें दाँव-पेचके लिये बौद्धिक शक्ति भी उतनी ही आवश्यक है। शाकाहारी शारीरिक शक्तिके साथ बौद्धिक शक्तिसे युक्त होते हैं।

डा० डी० एन् क्रेस० एम्० डी० ने लिखा है कि बहुतोंको यह विश्वास नहीं होता कि मांसको खानेसे उनका रक्त दूषित हो गया है और वही उनके बीमार पड़नेका कारण है। बहुत व्यक्ति ऐसी बीमारीसे मरते हैं, जो उनको मांसाहारके कारण हुई। इस बातका उनको तथा उनके मित्रोंको पता भी नहीं चलता।

डेन्मार्कके सुप्रसिद्ध डाक्टर और हेल्थकमिश्नर डा० एम० हिंटीडने लिखा है कि जब हमने दिनके तीनों आहारोंमें मांस-ही-मांसपर गुजारा किया तो तीन ही दिनमें इतने बीमार हो गये कि हम मांसाहारको जारी न रख सके।'

डा० राल्वोरका मत भी मांसाहारके विरुद्ध है। मिशीगन यूनिवर्सिटीके प्रो० न्यूवर्गका कथन है कि मांसाहार करनेसे धमनियाँ मोटी हो जाती हैं और ब्राइट्स सिल-सिल बोल अथवा बहुमूत्र और गुर्देकी बीमारियाँ हो जाती हैं। इसके प्रमुख डाक्टर रानिश्को, अमेरिकाके प्रसिद्ध डा० प्रो० मेकोलम, इंग्लैंडके प्रसिद्ध डा० एस० कीथ, सर० डब्लू ई० कूपर C. I. E. आदि अनेक डाक्टरोंने मांस खानेसे अनेक रोगोंका होना बतलाया है। श्रीयुत भास्कर गोविंद घाणेकरने अपने 'स्वास्थ्यविज्ञान' (पृ० १७१-१७४) में मांस और वनस्पतिवर्गपर तुलनात्मक प्रकाश डालकर वनस्पति-वर्गको ही श्रेष्ठ बतलाया है। इसी तरहका प्रकाश डा० त्रिलोकीनाथने 'हमारे शरीरकी रचना' (पृ० ५०७) में डाला है और वनस्पतिवर्गको ही श्रेष्ठ बतलाया है।

फिर मांसके वास्तविक रूपको देखकर कभी किसी मनुष्यको सुख और शान्तिका अनुभव नहीं होता। बल्कि, उसको देखते ही घृणा और द्वेषका भाव उत्पन्न होता है। घृणा और अरुचिके भाव उत्पन्न होनेपर उस भोजनको करनेसे पाचक रस आवश्यक मात्रामें नहीं बनते और अपचन होनेकी सम्भावना रहती है। आयुर्वेदने सुपाच्य भोजनको ही उपयोगी माना है और जिसमें पाचन-क्रिया अधिक होती है, उसकी उपयोगिता अच्छी नहीं समझी जाती। इसीलिये चरकमें अन्नको 'प्राणियोंका प्राण' कहा गया है—

प्राणाः प्राणभृतामन्नम्। (चरक सू० अ० २)

चरकमें ऐसा भी कहा गया है कि अनृशंसता (कठोरता) से रहित प्राणियोंको नित्य करुणापूर्ण दृष्टिसे देखनेवाला पुरुष नित्य रसायनसेवी कहलाता है—

आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम्।
.................विद्यान्नरं नित्यरसायनम्॥
(च० चि० अ० १)

रसायन वह है, जो जरा (बुढ़ापा) और व्याधिको दूर करे—

रसायनं तु तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्।
(शार्ङ्गधर पू० ख०)

अतः करुणापूर्ण दृष्टिसे तब ही देखा जा सकता है, जब मांस खाना और हिंसा होना एकदम बंद हो, प्राणिमात्रके प्रति सहानुभूति और सहयोगकी भावना हो। जीव-विज्ञान-वेत्ता इसीलिये कहते हैं कि प्रत्येक जीवकी एक दूसरेके लिये उपयोगिता है और यह उपयोगिता बहुत ही जरूरी है। इस नियमको वे सह-जीविता (Symbiosis) कहते हैं। सह-जीविताके अन्तर्गत सबका अस्तित्व सबके लिये है। फ्रांसीसी विद्वान् 'वाइडल डि ला ब्लाश' अपनी मूल पुस्तक Principles of human Geography में समस्त संसारके पदार्थोंको जीव माना है और कहा है कि वह समस्त जीवित शक्तियोंके साथ समायोजन करता है। उनमें स्वरूपान्तर होते रहते हैं, किंतु वे पूर्णतया नष्ट नहीं होते।

संसारमें जितने प्रकार, किस या तरहकी वस्तुएँ या जीव हैं, उतनी ही संख्या Molecules के जिन्हें जैन-दर्शन 'वर्गणा' का नाम देता है, प्रकारोंकी है। ये असंख्य, अगणित और अनन्त हैं। ये समस्त संसारकी हर वस्तु तथा प्रत्येक जीवके शरीरसे अगणितरूपसे निकलते रहते हैं, जो एक दूसरेके शरीरमें घुसकर आपसमें एक दूसरेपर प्रभाव डालते रहते हैं। हर एक मानव, पशु-पक्षी या पदार्थ या ग्रहसे उसीकी आकृतिके निकलनेवाले

Molecule केवल उसके-जैसी ही रूपरेखा नहीं बनाते, बल्कि वे उस मानव, पशु, पदार्थ, वनस्पति या ग्रहके गुण-स्वभावको भी लिये होते हैं, जिनका असर बाहरी समस्त संसारपर भी उसीके अनुसार पड़ता है।'

जब क्रोध या मोह या लोभके वशीभूत होकर यदि किसीका वध करनेकी बात सोची जाती है, तब उस मनुष्यके अंदर वैसे ही Molecule निर्मित होते हैं, जो बाहर निकलकर वैसा ही प्रभाव डालते हैं। आयुर्वेदाचार्य चरकऋषिने लिखा है कि जब मानवमें क्रोध, मोह, लोभ और अहंकार आ जाते हैं, तब वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि और आकाश—सब विकृत हो जाते हैं और इस विकृत अवस्थाकी स्थितिमें जो भी इनका उपयोग करता है, वह भी विकृत हो जाता है।

इस प्रकार मानव अच्छा पुरुषार्थ करता है तो अच्छे भावोंके चक्र बनाता है और सुखी होता है; क्योंकि भाव बुनियादी रूपवाली शक्तियाँ होती हैं। उनके सूक्ष्म Mental Molecules (मनोवर्गणाओं) को छायामात्र (Abstract) नहीं कह सकते। जब बुनियादी भाव अच्छे और स्वभावमूलक होते हैं, तब बाह्यचक्र भी समता-पूरक बनते हैं। यही कारण है कि आजके युगमें क्रोध, अभिमान, लोभ और हिंसाका बाहुल्य होनेके कारण दूषित Molecule बनते जा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप समस्त वातावरण दूषित बनता जा रहा है। विषमताएँ बढ़ रही हैं। समयपर वर्षा नहीं होती। अन्नके अधिक-से-अधिक साधन जुटाये जाने और प्रयत्न करनेपर भी अन्न-संकट बना रहता है। जो अन्न पैदा होता है, वह भी पहले-जितना पौष्टिक नहीं होता। अतः यदि ये विषमताएँ बढ़ती रहीं तो समस्त दुनियाके Molecule दूषित होते जायँगे और एक परिस्थिति ऐसी आयेगी कि अधिक खराब Molecule उत्पन्न होनेपर प्रकृतिमें विघटन होगा। समस्त संसारमें परिवर्तन होगा। यही पुनीत भारतीय साहित्यके अनुसार प्रलय कहलायेगी।

इसीलिये दुनियाका कोई धर्म या महापुरुष हिंसाका समर्थन नहीं करता। मनुस्मृति अ० ५ श्लोक ४८ में कहा है—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥

अर्थात् बिना प्राणियोंका वध किये मांस नहीं होता, वध करना स्वर्गका कारण नहीं, इसलिये मांसको नहीं खाना चाहिये।

ईसाइयोंके यहाँ Genesis, Chap. 129 में अन्नका समर्थन एवं Romans. 14.21 में मांसका निषेध किया गया है। उर्दूके प्रसिद्ध कवि हजरत जौक, शेखशिवली, 'गुलिस्ताँ' में शेखसादी, बगदादके कवि अबूअ-अला आदि पूर्ण अहिंसावादी और निरामिषभोजी थे। कुरानकी Lx एवं x आयतोंमें दया और निष्पक्षताके व्यवहारपर जोर दिया गया है और कहा गया है कि जो व्यक्ति एक जीवकी रक्षा करता है, वह मानो सारे मानवसमाजकी रक्षा करता है। (Koran x)

महाभारतके शान्तिपर्वमें अहिंसाका समर्थन और महर्षि चाक्रायणने मांसका घोर विरोध किया है। डा० जोशिया ओल्ड, सर हेनरी थाम्प्सन, प्रो० बायल, इंगलैंडके महाकवि शेक्सपियर, अंग्रेज नाटककार श्रीबर्नार्ड शा, जर्मनके प्रसिद्ध कवि गेटे, प्रसिद्ध अमेरिकन तत्त्ववेत्ता रस्किन, अमेरिकन कवि बाल्ट विटमैन, रूसके काउन्ट टाल्सटाय आदि अनेक महान् आत्माओंने अहिंसाका समर्थन ही नहीं किया अपितु ये सब पूर्ण निरामिषभोजी थे। भगवान् महावीर और महात्मा गांधी-जैसी विभूतियोंने अहिंसापर पूरा-पूरा जोर दिया। जैन तीर्थंकर तो सर्वज्ञ होते ही थे। ये सब महापुरुष अहिंसाकी महत्ताको जानते थे और यह भी जानते थे कि इससे प्रत्येक जीवधारीका कल्याण हो सकता है, सुख-समृद्धि बढ़ सकती है और इसकी विपरीततासे सिवा हानि होनेके कोई लाभ कभी नहीं हो सकता। इसीलिये उन महात्माओंने अपने जीवनमें अहिंसा उतारकर सभी मानवमात्रके हृदयमें अहिंसारूपी अमृतका स्रोत बहाया था।

अतः यह कहना कि मांस आदि और हिंसाका उपयोग दुनियाँकी सुख-समृद्धि और स्वास्थ्यकी वृद्धिके लिये किया जाता है सर्वथा भ्रम है। सुख-समृद्धि तथा स्वास्थ्यकी वृद्धि तो पूर्णतया मांस-त्याग और अहिंसासे ही होगी।

१. 'शरीरका रूप और कर्म', के० अनन्तप्रसाद 'लोकपाल'

एक कँटीले पेड़की कहानी

डेन्मार्ककी एक बोध-कथा

(लेखिका—श्रीमती रेवा दास)

वनमें एक छोटा-सा पेड़ खड़ा है। आँधी, पानी, धूपमें हिलता, भीगता और जलता रहता है। वनमें उस-जैसे और भी छोटे पेड़ हैं; पर उसके शरीरपर सिर्फ काँटे-ही-काँटे हैं, पत्तेका नाम नहीं। अफसोसमें डूबकर छोटा पेड़ सोचता है, 'मैं कितना बदनसीब हूँ! इस वनमें मेरे साथियोंके शरीरपर कितने सुन्दर और हरे-हरे पत्ते हैं और विधाताने मुझ अभागेको केवल काँटे-ही-काँटे दिये हैं। सब डरते हैं मुझसे। कोई मुझे नहीं छूता, जिससे कहीं उसके नरम हाथोंमें काँटे न गड़ जायँ। ओह! कितना अच्छा होता अगर दूसरे पेड़ोंकी तरह मुझपर भी पत्ते होते, सुन्दर पत्ते, सोनेकी तरह चमकीले पत्ते!'

पर उसके मनकी व्यथाको कौन समझेगा? इसलिये अपने मनकी व्यथाको मनमें ही दबाये सो गया कँटीला पेड़। अगले दिन सुबह हुआ। सूरजकी सुनहली रोशनी छा गयी जंगलके पेड़ोंपर। और आश्चर्य! सूरजकी रोशनीमें उस छोटे-से कँटीले पेड़पर नये-नये पत्ते चिल-चिला रहे हैं। शायद भगवान्ने कँटीले पेड़की प्रार्थना सुन ली। खुशीसे फूला न समाया पेड़, इस वनके किस पेड़में हैं उस-जैसे सुनहले पत्ते?'

दिनका सूरज साँझके अँधेरेमें छिपने लगा। घने अँधेरेने जैसे अलकतरा-सा पोतना शुरू किया वनके पेड़-पौधोंपर। हवा भारी हो गयी। फिर निस्तब्ध रात्रि। ऐसे समय एक कंजूस बूढ़ा आया चुपके-चुपके। पेड़ छोटा है तो क्या, सोनेके पत्ते तो लगे हैं इसपर। बूढ़ेने देरी नहीं की। एक-एक करके सारे पत्ते तोड़कर उसने अपनी थैली भर ली। ठूँठ बन गया वह छोटा पेड़, पर मनुष्यको बाधा देनेकी क्षमता कहाँ थी उसमें। तभी गहरी उसाँस खींचकर सोचा छोटे पेड़ने, 'कितना अभागा हूँ मैं। पर हाँ, इतने सुन्दर सुनहले पत्तोंको देखकर उस बूढ़ेके हृदयमें लोभ उत्पन्न होना भी स्वाभाविक है। उसे दोष नहीं दिया जा सकता इसके लिये। पत्ते तो जरूर हों मेरे, लेकिन सुनहले नहीं, काँचकी तरह चमकदार होनेसे ही काम चल जायगा।'

रात गहरी हुई। उल्लू बोलने लगे। झिल्लियोंकी झनकारसे सारी वनभूमि झन्नाने लगी, फिर एक और सबेरा हुआ।

आश्चर्य! रात्रिके बीतते ही स्फटिक-जैसे सुन्दर और स्वच्छ काँचके पत्तोंसे न जाने किसने उस छोटे पेड़को सजा दिया। सूरजकी रोशनीमें हीरेकी तरह चमकने लगे थे पत्ते। और जब वे सुबहकी मन्द बयारसे हिलते, तब वनभूमि एक मृदु-मधुर ध्वनिसे भर जाती।

खुश तो हुआ ही कँटीला पेड़। घमंड भी हुआ उसे, 'अब देखें सब मुझे। ऐसे सुन्दर पत्ते हैं किसी पेड़पर?'

ठीक उसी वक्त एकाएक सूरज छिप गया बादलके पीछे। और तभी न जाने कहाँसे तेज आँधी आकर सारे वनको झकझोरने लगी। बड़े-बड़े पेड़ हिलने लगे, जोर-जोरसे न जाने कितने छोटे-छोटे पेड़-पौधे मिट्टीपर लेट गये। उस छोटे पेड़के काँचके पत्ते झड़-झड़कर चकनाचूर हो गये।

'नहीं, न अब मुझे सोनेके पत्ते चाहिये, न काँचके। दूसरे पेड़ोंकी तरह हरे पत्ते ही काफी होंगे मेरे लिये।'

फिर जग उठा वह अगले दिनके सुबह। जगते ही उसने देखा कि उसकी देहपर हरे-हरे पत्ते सबेरेकी मीठी फुरफुरी हवामें खुशीसे नाच रहे हैं। अब मैं सचमुच खुश हूँ, सोचा उस छोटे पेड़ने।

पर एक बूढ़ा बकरा ताक लगाये बैठा था उसके नरम-नरम हरे-हरे पत्तोंपर। वह आकर पत्ते खाने लगा। छोटा पेड़ चुपचाप देखता रहा बकरेकी हरकत और बरदाश्त करता रहा अपने दिलकी तकलीफ। लेकिन बकरेको पेड़की तकलीफकी क्या परवा? उसने सब पत्ते खा लिये।

एक ठूँठ बन गया वह पेड़। दुखी होकर उसने कहा, धत्त तेरेकी। नहीं चाहिये मुझे पत्ते। न सोनेके न काँचके,

न हरे—नहीं चाहिये मुझे कुछ भी, नहीं चाहिये। इन पत्तोंसे तो पुराने काँटे ही बहुत अच्छे थे।

सो गया कँटीला पेड़। फिर रात बीतनेपर सबेरा हुआ। आँखें खोलीं कँटीले पेड़ने। पुराने काँटे फिर निकल आये हैं उसके शरीरपर। लेकिन अब वह छोटा कँटीला पेड़ काँटोंको लिये ही खुशीसे खड़ा रहा वनभूमिमें।

उधार ली हुई सम्पत्ति या सौन्दर्यसे, अपना जो कुछ है, उसे लेकर सिर ऊँचा किये खड़े रहना कहीं अच्छा है। इसीमें सार्थकता है जीवनकी, कँटीला पेड़ सोचने लगा इन बातोंको और मगन होकर हौले-हौले डोलने लगा।

स्वप्नदर्शन

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री एम्० ए०)

सृष्टिका प्रत्येक कार्य सोद्देश्य होता है। सोद्देश्य इसलिये कि उसके पहले कारण अनिवार्य रूपसे जुड़ा रहता है। जिस बातको हम भविष्य मानकर चलते हैं, उसका अस्तित्व वर्तमानमें है। प्रत्येक बीजमें सम्पूर्ण वृक्ष छिपा रहता है, एक पीढ़ी अन्तर्निहित रहती है। यह तथ्य न कल्पना है न असम्भव। जिन सामान्य बातोंको देखनेके हम अभ्यस्त हैं, उनके भविष्यको हम महत्त्व नहीं देते; क्योंकि उनका निरन्तर घटते रहना उसके चमत्कारको सामान्य बना देता है तथा वे सर्वविदित प्रक्रियाएँ हमारे लिये आकर्षणशून्य हो जाती हैं। इसके समानान्तर हमारे जीवनमें घटनेवाले भविष्यके प्रति हम विश्वस्त नहीं होते, पर उसके पूर्वरूप भी प्रत्यक्ष-परोक्षरूपमें व्यक्त होते रहते हैं। सामुद्रिकशास्त्र उसको रेखाओंसे अथवा आकृतिसे जाननेकी योग्यता देता है तो योगकी अन्तर्दृष्टि उसे सहज अनुमेय बना देती है।

भारतीय दृष्टिकोणसे स्वप्न भी सामान्य जीवनकी एक प्रकृति तो है, किंतु उसमें यदा-कदा भावी जीवनकी घटनाएँ प्रतिबिम्बित हो जाती हैं। हम जीवनकी इस स्वाभाविक अवस्थाको अर्थहीन मानकर इसपर विचार ही नहीं करते, अन्यथा कई बार मन भविष्यके गर्भमें छिपे दृश्योंको ग्रहण कर लेता है। यह तो निस्संदेह रूपसे आजतक माना जाता रहा है कि मनमें कोई विशिष्ट शक्ति है। योग या आराधन मनकी वृत्तियोंका निरोध करके उनको दिशाविशेषकी ओर एकस्थ करनेका उपदेश देता है तो भौतिक विज्ञानवादी भी किसी अलौकिक चमत्कारको व्यक्तिके जीवनमें घटित होते देखकर उसे 'इच्छाशक्ति'के रूपमें स्वीकार कर लेता है, किंतु इन सारी शक्तियोंका केन्द्र है वही मन। मुख्यतया मनकी तीन स्थितियाँ होती हैं। एकमें वह बाह्य प्रभावों अथवा तरंगोंको ग्रहण करता है, दूसरीमें वह विकिरण करता है, तीसरीमें वह क्रम और व्यवस्था बनाये रखता है। मनके सारे क्रियाकलाप अति सूक्ष्म तरंगोंके माध्यमसे होते हैं, मस्तिष्क उसका नियमनकक्ष (कण्ट्रोलरूम) है। वास्तवमें चेतनाका स्फुरण इसी मनके माध्यमसे होता है। इसको सर्वशक्तिसम्पन्न सारथिके समान बतलानेका अर्थ भी इसकी महत्त्वपूर्ण स्थितिके समझानेसे ही है।

स्वप्न फ्रायड्-सरीखे विचारकोंके दृष्टिकोणसे व्यक्तिकी दमित भावनाओंकी संतुष्टिके प्रतीक होते हैं। जिन वासनाओं-को हम जीवनमें व्यवहरणीय नहीं बना सकते, उन्हींकी पूर्ति अथवा प्रतिक्रिया स्वप्नोंके रूपमें अनुभूतिपटलपर उभरती है। कहीं-कहीं ऐसा भी होता है, किंतु सर्वांशतः नहीं। भारतमें दमन और शमन दोनों ही विधियाँ प्रचलित थीं। पराङ्मुख होकर सोचनेकी प्रक्रिया दमन कहलाती है। दमनमें स्वीकारको अस्वीकारके स्वरोंके बीच खो जाना पड़ता है, जबकि शमनमें दिशाएँ वही रहती हैं, पर उनका आयाम बदल जाता है। शमन बहुत कुछ यथार्थकी अनिवार्यताको विकासका अवसर देता है। शैव और शाक्त पद्धतियोंमें शमनका ही स्वीकार है, दमनका बहुत कम; इसलिये स्वप्नजगत्‌को मात्र प्रतिक्रिया किंवा अतृप्त वासनाओंकी तृप्तिमात्र मान लेना भारतीय दृष्टिकोण नहीं है और न इसमें कोई औचित्य है।

मन इस शरीरका अधिष्ठाता है, और शरीरके पाँच कोशोंमेंसे एक मनोमय कोष भी है; इसलिये शारीरिक प्रभावोंसे मनका क्षुण्ण होना एक स्वाभाविक बात है। आयुर्वेद स्वप्नोंका एक कारण और बताता है, वह है दोषोंकी उग्रता अथवा विषमता। आयुर्वेद कीटाणुवादसे परिचित

होकर भी उसकी (शरीरकी) सूक्ष्म प्रक्रियाको सर्वशुद्ध विधिसे समझनेके लिये दोषवादकी स्थापना करता है और उसकी इस स्थापनामें कहीं भी व्यतिक्रम नहीं होता। इसी क्रममें आयुर्वेद कहता है कि वातका प्रकोप होनेसे व्यक्ति हवामें उड़ता है, पर्वत-शिखरोंपर चढ़ता है तथा कफकी बहुलतासे नदीमें तैरना, विशाल जलाशयोंका दिखायी देना होता है। अनुभव करनेपर इस कथनमें भी सत्य सिद्ध होता है।

कई बार अधिक खा लेनेसे भी पूर्ण निद्रा नहीं आती और स्वप्न आते रहते हैं तो कई बार प्राकृतिक संवेगोंके रोकनेपर भी स्वप्न आते रहते हैं। इन सबका कारण शारीरिक अस्वस्थता या अव्यवस्थितता ही होती है। किसी विषयका सतत चिन्तन भी स्वप्नमें उन अनुभवोंको सजीव बना देता है। योगने स्वप्नोंपर अधिक स्पष्ट एवं सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार मन जब सुषुम्णा नाड़ीमें प्रवेश करता है, तब निद्रा आती है। और सुषुम्णा है— विराट्की प्रतिमूर्ति। पुनर्जन्ममें विश्वास रखनेवाले भारतके महर्षियोंने उसे ब्रह्माण्डकी अन्तर्दृष्टि बताया है। कई पुनर्जन्मोंका इतिहास उसमें सुरक्षित है। संवेगोंके कारण अथवा शारीरिक अस्तव्यस्तताओंके कारण जब मन पूर्णतः उस सुषुम्णामें प्रवेश नहीं करता तो अर्थहीन और विसंगत कल्पनाओंका सृजन करता रहता है।

वैज्ञानिक चाहे कुछ भी कारण बतायें, किसी भी भाषामें समझायें, पर स्थितियोंका अपना एक निरपेक्ष महत्त्व होता है। कोई भी व्यक्ति यदि अपने जीवनमें घट रही घटनाओंका थोड़ा ध्यानसे विश्लेषण करे तो बहुत सारे रहस्य उसे स्वतः अनावृत होते दिखायी देने लगते हैं। कई बार हमारे कानोंमें किसी परिचित ध्वनिकी, संगीतकी अथवा गीतकी स्वरलहरी गूँज जाती है, वैसे ही प्रत्यक्षतः दूर या निकटमें किसी गन्धका स्रोत न होनेपर भी कोई गन्ध महक जाती है—ये सब अनुभव महत्त्वहीन भले ही समझ लिये जायँ, पर इनके पीछे भी एक रहस्य रहता है, एक कारण होता है। वह गन्धाभास या ऐन्द्रिय मुखर अनुभव अतीतमें हुए हैं, यही एक कारण नहीं है, बल्कि उस समय भी वे वातावरणमें विद्यमान हैं, गतिशील हैं और होता यह है कि उस क्षण हमारी ऐन्द्रिय-संचेतना प्रखर हो जाती है। इसलिये वह उन सूक्ष्म प्रवाहोंको भी ग्रहण कर लेती है।

स्वप्नमें भी कभी-कभी हमारा चेतन मन वातावरणमें व्याप्त घटनाओं और अनुभूतियोंको ग्रहण करके उनको अनुभूतितक ले आता है। प्रश्न यह उठता है कि जिन दृश्योंको हमने कभी नहीं देखा—उस स्वप्न-संसारका अस्तित्व क्या कहीं है? ऐसी सम्भावनाओंका उत्तर भारतीय मनीषी यह देते हैं— सुषुम्णामें संगृहीत हमारे अनुभव मानसपटलपर प्रतिबिम्बित होते हैं। मन सदा अदृष्टकी ही कल्पना नहीं करता, उसकी कल्पनाका किसी अतीतसे, अनुभूत सत्यसे सम्बन्ध अवश्य रहता है। स्वप्न निद्रित अवस्थामें ही नहीं देखे जाते। जाग्रत् अवस्थामें भी स्वप्न-जैसी स्थिति आ जाती है। निद्रामें जिन परिकल्पनाओंकी अनुभूति होती है, उनमें एक विशेषता यह रहती है कि उसमें इतर इन्द्रियोंको अनुभूति मन स्वयं प्रदान करता है, जब कि जाग्रत् अवस्थामें इन्द्रियाँ अपना अनुभव मनको प्रस्तुत करती हैं।

स्वप्नका अर्थ मूलतः कुछ भी रहा हो, पर आजतक उसे यथार्थसे परे किंवा विलुप्तका प्रतीक माना जाता है। हर युग एक युगके लिये स्वप्न रहता है और स्वप्न था। हर स्वप्न कभी यथार्थ रूपमें था। मन सक्षम होकर भी (उसकी वृत्तियोंकी सीमा होती है) एक वृत्तमें ही घूम पाता है। जैसे एक बालक किसी विशाल कमरेमें बंद रहकर उसीकी सीमामें अपने ज्ञानको विकसित करता है तथा उसकी कल्पनाओंमें उस अर्जित ज्ञानका किसी-न-किसी रूपमें आधार अवश्य रहता है, उसी तरह मनके प्रत्येक संकल्प-विकल्पका, कल्पनाओंका कोई आधार निश्चित रूपसे रहता है। दूसरे शब्दोंमें यह भी कहा जाय तो कोई अघटित बात नहीं कि मन असत्यकी कल्पना ही नहीं कर सकता। हाँ, विरोधाभासोंका सृजन वह कर सकता है, पर उनमें भी कोई साधारता होती अवश्य है।

आजसे पहले और आज भी कई व्यक्ति अपने भविष्यको स्वप्नमें घटित होता देख लेते हैं तो किसीको स्वप्नमें ही किसी माध्यमद्वारा आगामी सूचनाएँ मिल जाती हैं— यह चमत्कार नहीं, ऐसी सांकेतिक भाषा है जिसे प्रयत्न करनेपर हर कोई समझ सकता है। इन घटनाओंको हम केवल आस्था या विश्वास मानकर ही विचारयोग्य न मानें और एक वर्गविशेषतक सीमित कर दें—यह दूसरी बात है, अन्यथा इसकी भी एक प्रक्रिया है।

कुछ व्यक्ति इस तरहके भी होते हैं, जिनको स्वप्न

याद नहीं रहते तो किसीको किसी अवस्थामें स्वप्न आते ही नहीं—यह बात निर्भर करती है व्यक्तिकी मौलिक संरचना और शारीरिक अथवा मानसिक स्थितियोंपर। सामान्य स्वप्नोंकी कोई बात नहीं, पर अलौकिक अथवा असाधारण स्वप्न अवश्य कोई अर्थ रखते हैं। स्वप्नविज्ञानके अनुसार तो प्रत्येक सुन्दर, मनोरम और स्वच्छ वस्तु किसी अनुकूल फलकी या सफलताकी प्रतीक मानी जाती है। ऊँचे-ऊँचे महल, हरे-भरे बाग, सूर्यका उदय, देवमन्दिर आदिका दर्शन निकट भविष्यमें होनेवाली उन्नतिकी सूचना देता है।

स्वप्नोंके इतिहासमें आदिकवि वाल्मीकिके सुन्दरकाण्डमें त्रिजटाका भयानक स्वप्न कविकी कल्पना ही नहीं है, उसके पीछे स्वप्नोंका एक वैज्ञानिक आधार है, स्वप्नोंके विषयका व्यावहारिक ज्ञान है। त्रिजटाने जो भी कुछ देखा, वह उसी रूपमें नहीं घटा, पर उससे विपरीत भी नहीं घटा। वास्तवमें यह दृश्यजगत् इतना ही नहीं है, जितना हमें दीखता है। सामान्यतया हमारी इन्द्रियोंकी क्षमता सीमित है। आँखें तैजस तत्त्वका ही ग्रहण कर पाती हैं, कान आकाशीय गुणको ही ग्रहण कर पाते हैं। जिन पदार्थोंका वायवीय अस्तित्व है, वे हमारे लिये ग्राह्य नहीं हो सकते अथवा जिनमें तैजसतत्त्व भी अनुपातमें न्यूनाधिक रहता है, वे भी हमारी ग्राह्यशक्तिकी सीमासे परे रहते हैं। यही एक कारण है कि वातावरणमें तैर रही असंख्य ध्वनियाँ हमारी श्रवणशक्तिके लिये ग्रहणयोग्य नहीं रहतीं। हमारी शक्ति सीमित होनेमात्रसे हम किसी चीजके अस्तित्वको असत्य नहीं कह सकते। यही हाल हमारे मनकी कल्पनाशक्तिका है। वह अपरिमेय शक्तिसम्पन्न होकर भी भौतिक सीमाओंमें साधारणतया बँधा रहता है और इसलिये व्यापक अर्थोंमें उसकी कल्पनाशक्तिको भी एक सीमामें समझा जाता है।

आजतक और आज भी कई व्यक्तियोंके अनुभवसे यह सिद्ध हो गया है कि स्वप्न अर्थहीन ही नहीं होते और न उनमें केवल दमित वासनाओंकी तृप्तिमात्र ही रहती है। भारतीय मान्यताके अनुसार तो हृदय भी चेतनाका कोष है। केवल रक्तनिर्माण और रक्तशोधनके अलावा भी उसका कोई कार्य है। वह हमारे शरीरमें प्रवाहित हो रही विद्युत्-धाराका एक केन्द्र है, इस बातको स्वप्नविज्ञान भी मानता है और ऐसा व्यक्तिके जीवनमें घटता भी है। कई बार सोतेमें जब हमारा हाथ छातीपर या हृदयपर रक्खा जाता है तो भयानक स्वप्न आते हैं। चीख भी घुटी-घुटी-सी निकलती है। इसका कारण यह है कि हाथोंसे निकल रही विद्युत्-किरणें हृदयको प्रभावित करती हैं, उसकी सामान्य क्रियामें अन्तर आता है और उसका प्रभाव पड़ता है मन-पर। इस प्रकारकी अव्यवस्थामें मन स्वाभाविक रूपमें नहीं रह पाता।

जिन बातोंको अथवा वस्तुओंको हम जाग्रत् अवस्थामें अच्छा मानते हैं, वे स्वप्नमें भी अच्छी ही हों, यह साधारण रूपमें नहीं होता। जो स्वर्ण हमारे दैनिक जीवनमें प्रिय है, उसका स्वप्नमें दिखायी देना किसी आनेवाली विपत्ति (शारीरिक पीड़ा) का प्रतीक माना जाता है। यदि हमारा कोई पारिवारिक या प्रियजन स्वप्नमें मृत दिखायी देता है और रोना-पीटना हो रहा होता है, तो इससे उस रुग्ण व्यक्तिके स्वास्थ्य-लाभकी सूचनाके रूपमें समझा जाता है। इसके साथ ही विवाह होना और गीत गाना-जैसी स्थितियाँ किसी अशुभका संकेत करती हैं। मृत व्यक्तियोंका स्वप्नमें दिखना, ऊँटपर चढ़ना, तेल पीना या तेलके कड़ाहे-कुण्डमें पड़ना, सूर्यास्तका दृश्य, कीचड़में लिपटना, मुण्डन किये व्यक्तियोंका दर्शन, ताँबा, पीतल, लोहे आदिके सिक्के मिलना सदा अशुभ माना जाता है। चाँदी, चन्द्रमा, शुभ्रवस्त्र धारण किये व्यक्ति, संगमरमरके महल, सूर्योदयका दृश्य, देवमन्दिर, अनुपम सौन्दर्यशाली बगीचे, खिलते हुए कमल—ये सब शुभ लक्षण हैं।

स्वप्नोंके शुभाशुभपर विचार करते हुए शास्त्रोंने कहा है कि इनका शुभ या अशुभ फल तीन दिनमें, तीन पक्षमें, तीन मासमें और तीन वर्षतकमें मिल जाता है। प्रायः स्वप्न रात्रिके तीसरे पहरमें आनेवाले फलदायक होते हैं। शुभ स्वप्न देखकर यदि आदमी जग गया है तो उसे फिर नहीं सोना चाहिये। इसके विपरीत अशुभ स्वप्न देखकर जगता है तो उसे फिर सो जाना चाहिये। स्वप्नोंको भावीका पूर्व-रूप माननेवाले स्वप्न-शास्त्रने अशुभ स्वप्नोंके दोषका शमन करनेके लिये विविध उपाय बताये हैं।

भारतीय चिन्तकोंने ज्ञानके किसी भी क्षेत्रको अछूता नहीं छोड़ा है और उसपर साधिकार एवं वैज्ञानिक विवेचन

प्रस्तुत किया है किंतु आज इतने बड़े ज्ञानभंडारके रहते हुए भी हम दरिद्र हैं; क्योंकि हमारे खजानेको हम टटोल नहीं रहे हैं, उसमें वृद्धि नहीं कर रहे हैं और उसे व्यवहार-योग्य नहीं बना रहे हैं। यदि आस्थाके बलपर विश्वासके साथ हम अपने प्राचीन विज्ञानको ही युगानुरूप ढालनेका प्रयत्न करें तो आज भी किसी चीजकी कमी नहीं है।

श्रीआर० डी० रानडे और उनकी उपासना

परिचय

प्रयाग-विश्वविद्यालयका वाइस चान्सलर क्या ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है, जिसने स्वयं अनेक आध्यात्मिक चमत्कारों-का अनुभव करके आत्मसाक्षात्कार किया हो और उसको सहस्रों साधक, जिनमें कतिपय विदेशी विद्वान् भी हैं, गुरुदेव मानते हों। यह असम्भव लगनेवाली बात केवल भारतकी पुण्यभूमिमें ही घट सकती है; क्योंकि योगभ्रष्ट मुनियोंके जन्मके लिये यही क्षेत्र उपयुक्त है। ये थे हमारे प्रातःस्मरणीय स्वनामधन्य श्रीरामभाउ दित्तोपंत राणडे महोदय।

इनका जन्म ३ जुलाई सन् १८८६ में श्रीदित्तोपंतजी-के जो जामखंडी राज्यमें मामलतदार (तहसीलदार) थे, घर हुआ था। इनकी माता पार्वतीदेवी बड़ी भक्तिमती थीं। सदा नामजपमें लीन रहती थीं। योगभ्रष्ट बालक साधारण नहीं होते। इनमें अध्यात्मकी ओर सहज रुचिके साथ प्रखर कुशाग्रबुद्धि और निर्मल चरित्र भी था। अपने सहज गुणोंके कारण ही ये विद्याध्ययनके समय अपने समकक्ष बालकों तथा अध्यापकोंके प्रिय बने रहे। मैट्रिकमें सारी बंबई यूनिवर्सिटीमें इनका नंबर दूसरा था और संस्कृतमें नंबर प्रथम था, जिससे इनको विद्यार्थीवृत्ति तथा अन्य पुरस्कार भी मिले। जब ये फिलॉसॉफीकी एम० ए० परीक्षामें बैठे, तब इन-के परीक्षकोंने लिखा था कि परीक्षार्थीका फिलॉसॉफीका ज्ञान परीक्षकोंसे भी अधिक है। यह विश्वविद्यालयके इतिहासमें एक विलक्षण वक्तव्य था।

बी० ए० की परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके पश्चात् इनको अपने ही सरकारी दक्षिण कालेजमें अध्यापकका पद मिल गया था, किंतु एक भयानक रोग हो जानेसे इन्होंने यह काम छोड़ दिया। फिर प्रभु-कृपासे स्वस्थ होकर ये दक्षिण शिक्षा-समितिसे चलाये जानेवाले फर्गुसन कालेजमें प्रोफेसर ऑव फिलॉसॉफी नियत किये गये। कई वर्ष इन्होंने इस पदको विभूषित किया। इनके अद्वितीय ज्ञान तथा शिक्षा-की शैलीकी ख्याति दूर-दूर पहुँची और अन्य प्रान्तोंके भी विद्यार्थी आने लगे। इनका दुबला-पतला ऋषियों-जैसा कृश शरीर इनकी साधना तथा अथक परमार्थ-प्रचारका साथ न दे सका और रोगग्रस्त रहने लगा। कुछ अन्य कारण भी थे, जिससे इन्होंने प्रोफेसरीका वह काम छोड़ दिया।

इन्होंने भारतीय तत्त्वज्ञानके ग्रन्थोंका तथा यूनानी भाषा सीखकर यूनानके पूर्वकालके तत्त्ववेत्ताओं तथा आंगल, जर्मन फिलॉसफरोंकी कृतियोंका स्वाध्याय, समन्वय तथा विश्लेषण बड़ी ही लगनसे अपने अध्यापन-कालमें किया था। महाराष्ट्रके संत कवियोंकी वाणी, हिंदी-भाषी संतोंकी वाणी तथा अन्तमें कर्नाटकके संतोंकी वाणीका अध्ययन केवल इस उद्देश्यसे किया था, जिससे इनके मतानुसार प्रभुप्राप्ति-का पथ निश्चित हो सके।

योगभ्रष्ट व्यक्ति होनेके कारण इनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य ईश्वरसाक्षात्कार तथा परमार्थ-प्रचार ही था।

संतोंका जीवमात्रमें आत्मबुद्धि होना आत्मसाक्षात्कार-का फल है। चूँकि उनको प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि सभीमें एक आत्मा विराजमान है, इसलिये वे देश तथा कालके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। सारा विश्व ही अपना रूप है। अपने जीवनभरके अनुपम स्वाध्याय तथा साधनकी विभूतियों-को वे कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा भारततक ही केन्द्रित रखना नहीं चाहते थे, किंतु सारे संसारमें जनकल्याणके लिये वितरण करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने इसके लिये अंग्रेजी भाषा-को उपयुक्त पाया। यही एक भाषा है, जो संसारके सभी महाद्वीपोंमें समझी जाती है।

इस सम्बन्धमें इनकी प्रथम पुस्तक थी—

1. Constructive Survey of Upanishadic Philosophy

(उपनिषदोंके सिद्धान्तोंकी व्युत्पत्ति तथा विकासकी समीक्षा)

—जिसका प्रकाशन सन् १९२६ में हुआ था। इससे इनकी

ख्याति संसारभरमें फैल गयी। उस समयके तत्त्वज्ञानविशारद जर्मन प्रोफेसर गार्बेका मत था कि इस एक ग्रन्थने इनकी कीर्तिको अमर बना दिया है।

2. Mysticism in Maharashtra

(महाराष्ट्रका अध्यात्म)

3. Pathway to God in Hindi Literature

(हिंदी साहित्यमें ईश्वर-प्राप्तिका पथ)

4. Conception of Spiritnal Life in Mahatma Gandhi and Hindi Saints

(महात्मा गान्धी तथा हिंदी-संतोंमें आध्यात्मिक जीवनका तत्त्व)

5. Bhagwad Gita as a Philosophy of God-Realization

(भगवद्गीता ईश्वर-साक्षात्कारके तत्त्वनिरूपणका ज्ञान है)

6. Pathway to God in Kannad Literature

(कन्नड़ साहित्यमें ईश्वरप्राप्तिका पथ)

7. Vedanta as the Culmination of Indian Thought.

(भारतीय विचारधाराका सर्वोत्तम फल वेदान्त)

इनके अतिरिक्त इनकी अन्य भी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तथा उपदेश और निबन्ध हैं।

प्रयाग-विश्वविद्यालयने इनकी प्रथमपुस्तकसे ही इनकी विलक्षण विद्वत्ता, फिलॉसॉफीका अपूर्व गम्भीर ज्ञान तथा कुशाग्रबुद्धिका परिचय प्राप्त कर लिया था। इसलिये उन्होंने इनको फिलॉसॉफी विभागके अध्यक्ष (Head the Philosophy Department) के पदको ग्रहण करनेके लिये अनुरोध किया और इन्होंने इस पदको सन् १९२७ में ग्रहण कर लिया।

इस उच्चपदको इन्होंने किस भाँति अलंकृत किया और विश्वविद्यालयमें इनके व्यक्तित्वका क्या प्रभाव पड़ा, यह इस बातसे स्पष्ट है कि थोड़े समयमें ही ये 'फैकल्टी आव आर्ट्स' के डीन नियत किये गये और फिर सन् १९४२ में ये वाइसचाँसलर बना दिये गये। १९४६ में जब इन्होंने अवकाश ग्रहण किया, तब इनको बड़े मान तथा प्रतिष्ठानुरूप सर्वोच्च 'डी० लिट्०' की उपाधि दी गयी।

आत्म-विकास

इनकी पूज्या माता, जब इनकी आयु चार ही वर्षकी थी, अपने सद्गुरु जामखंडीके प्रसिद्ध संत महालिङ्गम् स्वामीकी चरणरज स्पर्श कराने ले गयीं। उस समय श्रीस्वामीजी महाराज नन्दीश्वरके मन्दिरके बरामदेमें विराज रहे थे। अपने चरणोंमें नतमस्तक और श्रद्धाभक्ति-भरे नयनोंसे स्वामीजीको निहारते हुए बालकपर दृष्टि डालते ही वे गम्भीर होकर आकाशकी ओर देखने लगे और बोले—'माता! यह बालक प्रभुकृपाका भाजन है। यह बालसंत अपने भक्तोंपर कृपा करनेके लिये अवतीर्ण हुआ है। इसलिये पहले मैं ही इसको नमस्कार करता हूँ।' त्रिकालज्ञ संतकी यह भविष्य-वाणी अक्षरशः सत्य होकर रही।

अभी ये जामखंडी स्कूलमें ही थे, जब इनको कर्नाटकके उस समयके प्रसिद्ध संत श्रीभाऊजी महाराजकी कृपा प्राप्त हुई और ये उनके आज्ञानुसार साधन-भजन करने लगे। गुरुकी महत्तामें दृढ़ विश्वास होनेसे उनके वचन-पालनमें सुख मिलता है और साधन गम्भीर हो जाता है। एक समय प्रसङ्गवश श्रीगुरु महाराजने कह दिया कि 'नाम-जप करनेसे परीक्षामें ऊँचा स्थान मिल सकता है।' यह बात इनके हृदयमें जम गयी। जब इन्होंने मैट्रिककी परीक्षा दी तो स्वामीजीके वचनकी सत्यता जाँचनेके लिये इन्होंने परीक्षाफल निकलनेतक नियमसे जप किया और, जैसा ऊपर लिखा गया है, इनको अभूतपूर्व सफलता मिली और इनको स्वामीजीमें विश्वास तथा भक्ति दृढ़से दृढ़तम हो गयी। इन्होंने दक्षिण कालेज पूनामें, जो एक सरकारी संस्था थी, जिसमें धनी-मानी लोगोंके पुत्र बड़े ठाटसे विलासिताका जीवन अपना लेते थे, चार वर्षतक रहकर भी अपने साधन-भजन तथा पुरातन जीवनको ही अपनाये रक्खा। फिर भी अपने दिव्य गुणोंके कारण अंग्रेज प्रोफेसरोंके परम प्रिय कृपा-भाजन बने रहे।

यद्यपि आध्यात्मिक अनुभवों तथा चमत्कारोंका ईश्वर-साक्षात्कारके पथमें कोई विशेष महत्त्व नहीं, फिर भी उनसे साधकको अपने साधनकी सत्यताकी आस्था निस्संदेह बढ़ जाती है। प्रभु-कृपा और सद्गुरु महाराजके प्रसादसे इन्हें इन्द्रियातीत दिव्यनादश्रवण, दिव्यदर्शन, दिव्यसुगन्ध आदि

के अनुभव होते रहे और अन्तमें आत्मसाक्षात्कारसे अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति हुई ।

इनके जीवनका लक्ष्य परमार्थ-प्रचार था । इन्होंने निम्बल ग्राममें एक सुन्दर विशाल आश्रम स्थापित किया था । जब आप प्रयागमें काम करते थे, तब सारी छुट्टियाँ वहीं रहते और दीक्षार्थियोंको दीक्षा देते थे । इनके श्रीगुरु महाराजके चोला छोड़नेपर इनके गुरुभाई श्रीगुरुमहाराजका कार्य सँभालते रहे, ये बाबाजी कहलाते थे । उनके ब्रह्मलीन होनेके पश्चात् इनके गुरुभाइयोंने इनको ही गुरुमहाराजका स्थान ग्रहण करनेके योग्य जानकर यह कार्य सँभालनेका अनुरोध किया । सहस्रों जीवोंका कल्याण करके सन् १९५७ में इन्होंने इह-लीला समाप्त करके महासमाधि ले ली ।

सज्जन और दुर्जन (एक दृष्टि)

(लेखक—श्रीदिनेशदत्तजी त्रिपाठी)

लोग कहते हैं सज्जनोंका हृदय कठोर नहीं होता, परंतु लगता है कि सज्जनका हृदय बहुत कठोर होता है । यदि सज्जनोंका हृदय कठोर न होता तो दुर्जनोंके वचनरूपी बाणोंसे छिद क्यों नहीं जाता । लेकिन छिदना तो दूरकी बात है, उनसे रेखामात्र भी नहीं लगती । किसीने कहा है—

हृदयानि सतामेव कठिनानीति मे मतिः ।
खलवाग्विशिखैस्तीक्ष्णैर्भिद्यन्ते न मनाग्यतः ॥

तुलसीदासजीने भी कहा है—

दुर्जन बदन कमान सम, बचन बिमुंचत तीर ।
सज्जन उर बेधत नहीं, छमा-सनाह सरीर ॥

हाँ, यह बात दूसरी है कि वे दुर्जनोंको बराबर क्षमाकी दृष्टिसे देखते हैं, इसीमें उनकी महानता है । सज्जनोंके हृदय दुर्जनोंके वचनरूपी बाणोंके लिये कठोर अवश्य होते हैं, परंतु दुखियों—असहायोंके लिये शीघ्र पिघल भी जाते हैं ।

देखनेमें आता है कि इस कलियुगमें सब सज्जन पुरुष कष्ट ही झेलते रहते हैं । कलियुग भी कहता है, सज्जन लोग पैदा हुए मेरे युगमें और काम करते हैं सत्ययुगका, इसलिये वह क्रोधित होकर उन्हें सताया करता है । किसीने कहा है—

लोको मद्युगजन्मा कृतकृतकर्मा न मद्धर्मा ।
इति हेतोरिव कलिना बलिना सम्पीड्यते साधुः ॥

दुर्जनोंके साथ रहनेपर सज्जनोंको कितनी विपत्ति सहनी पड़ती है, यह सर्वप्रसिद्ध बात है । यदि देखा जाय तो श्रीरामकी पत्नीको रावणने हरा था; परंतु बँधना पड़ा समुद्रको । कारण केवल रावणका पड़ोस था । प्रसिद्ध है कि लङ्कातक पहुँचनेके लिये, रामको समुद्रपर पुल बाँधना पड़ा था । एक कविने कहा है—

दुर्वृत्तसंगतिरनर्थपरम्पराया
हेतुः सतां भवति किं वचनीयमत्र ।
लङ्केश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं
प्राप्नोति बन्धनमसौ किल सिन्धुराजः ॥

इसी सम्बन्धमें रहीमका भी स्पष्ट विचार है—

करि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस ।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यौ परोस ॥

दुर्जनके साथ मित्रता बढ़ानेका विचारमात्र भी मनमें नहीं लाना चाहिये । दुर्जन अङ्गारके समान होता है, जो गरम होनेपर हाथको जला देता है और ठंडा होनेपर हाथको काला कर देता है । एक संस्कृत-कवि कहते हैं—

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥

इसके बारेमें रहीमजीका भी यही विचार है—

खोटे कौ सँग साथ, हे मन ! तजौ अँगार ज्यौं।
तातौ जारै हाथ, सीतलहू कारौ करै॥

और इधर उत्तम पुरुषको देखिये—जिस प्रकार चन्दन बार-बार घिसे जानेपर भी अपनी सुगन्ध नहीं छोड़ता, गन्ना बार-बार चूसे जानेपर भी अपनी मिठास नहीं छोड़ता, सोना बार-बार तपाये जानेपर भी अपनी सुन्दर चमकको नहीं तजता, उसी प्रकार सत्य है, उत्तम पुरुष प्राणोंके जानेपर भी अपना उत्तम स्वभाव नहीं छोड़ते। कविका दृष्टान्त है—

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं
छिन्नश्छिन्नः पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुदण्डः।
तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम्॥

दुर्जन लोग विषसे भी बढ़कर हैं। विष कटु होता है, पीड़ा देकर जान ले लेता है; परंतु दुर्जनके वचन उनसे बढ़कर हैं, जिनके लगते ही प्राण रहते हुए भी मनुष्य एक बार निष्प्राण हो जाता है। एक कविकी अन्योक्ति है—

अहमेव गुरुः सुदारुणाना-
मिति हालाहल तात मा स्म दृप्यः।
ननु सन्ति भवादृशानि भूयो
भुवनेऽस्मिन् वचनानि दुर्जनानाम्॥

उर्दूका एक शैर है—

छुरीका, तीरका तलवारका तो घाव भरा।
लगा जो जख्म जुबाँका रहा हमेशा हरा॥

सज्जन संसारमें पृथ्वीपर केवल दो-चार ही कहीं दिखायी पड़ते हैं—ठीक उसी तरह जैसे नीमके वृक्ष बहुत हैं, परंतु चन्दनका वृक्ष कहीं-कहीं है। पृथ्वी पत्थरोंसे भरी पड़ी है, पर बहुमूल्य पत्थर हीरा आदि कठिनाईसे मिलते हैं। कौओंकी काँव-काँव सदा सुनायी पड़ती है, परंतु कोयलकी मधुर कूक केवल चैत्र मासमें ही सुनायी पड़ती है—

दृश्यन्ते भुवि भूरिनिम्बतरवः
कुत्रापि ते चन्दनाः।
पाषाणैः परिपूरिता वसुमती
वज्रो मणिर्दुर्लभः॥
श्रूयन्ते करटारवाश्च सततं
चैत्रे कुहूकूजितम्।
तन्मन्ये खलसंकुलं जगदिदं
द्वित्राः क्षितौ सज्जनाः॥

सज्जन लोग दुर्जनोंके साथ रहकर भी अपनी उत्तम प्रकृति नहीं छोड़ते—ठीक उसी तरह जैसे चन्दन-वृक्षपर कितने ही सर्प क्यों न लिपटे रहें, उसपर विषका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

विकृतिं नैव गच्छन्ति सङ्गदोषेण साधवः।
आवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते॥

और ठीक यही बात रहीम भी कहते हैं—

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन बिष ब्यापै नहीं, लिपटे रहत भुजंग॥

अन्तमें एक बार सज्जनोंकी वचनबद्धतापर भी ध्यान दीजिये। सज्जनलोग जो कहते हैं, वही करते भी हैं। सूर्य भले ही पश्चिममें उदय होने लगे, मेरुपर्वत भले ही स्थान-परिवर्तन कर जाय, अग्नि भले ही अपना स्वभाव छोड़कर शीतल हो जाय और कमल जल तथा कीचड़ छोड़कर पर्वतकी शिलापर क्यों न खिले; परंतु सज्जनलोग अपनी बातसे नहीं डिगते। कविकी भाषामें—

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां
न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम्॥

तुलसीदासजी श्रीरामकी कुलपरम्पराका वर्णन करते हुए कहते हैं—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु बचन न जाई॥

(१)

जो प्राप्त करना चाहते हो, पहले वह देना शुरू करो

प्रिय श्री········! सप्रेम हरिस्मरण । तुम्हारा पत्र मिला था । उत्तर कुछ देरसे जा रहा है । तुमने लिखा कि 'मुझसे वे लोग सदा ही द्वेष रखते हैं, सदा ही मानो शत्रुताका बर्त्ताव करते हैं । दुःख तो यह है कि मैंने कभी उनसे न तो द्वेष किया और न शत्रुताका ही कभी विचार किया ।' सो भाई ! वे तुमसे कितना कैसा द्वेष रखते हैं, क्या-क्या शत्रुताका बर्त्ताव करते हैं—यह तुमने नहीं लिखा । हो सकता है—यह सब तुम्हारे मनका निरा मिथ्या भ्रम ही हो अथवा तुम्हारे मनमें उनके प्रति छिपा द्वेष हो—इस कारण उनकी प्रत्येक क्रियामें, उनके प्रत्येक विचारमें तुम्हें यह दोष दिखायी देता हो कि वे तुमसे द्वेष तथा शत्रुभाव रखते हैं । यह नियम है कि जिसमें हमारा द्वेष होता है, उसमें बिना हुए ही दोष तथा उसके गुण भी दोष दीखते हैं और जिसमें हमारा राग होता है, उसमें बिना ही हुए गुण तथा उसके दोष भी गुण दीखते हैं । मनुष्य अपने दोषकी ओर प्रायः देखता ही नहीं तथा रागके कारण सहज ही अपने दोष दिखायी भी नहीं देते । हो सकता है, उससे अपनेमें बहुत अधिक दोष हों एवं उसमें अपनेसे बहुत कम हों; पर उसमें अपने बड़े भी दोष नहीं दिखायी देते और दूसरेका छोटा दोष भी बहुत बड़ा दीखता है । तुलसीदासजीने सच कहा है—

आप पाप को नगर बसावत सहि न सकत पर खेरो।

पर यदि सचमुच भी वे तुमसे द्वेष एवं शत्रुता रखते हों तो तुम उसके बदलेमें उनसे प्रेम तथा उनका हित करो । यों करोगे तो तुम्हारे प्रेम तथा हित-भावसे उनका द्वेष तथा शत्रुभाव परास्त हो जायगा । तुम्हारी कोई भी हानि नहीं होगी । प्रत्युत तुम्हारा प्रेम तथा हितभाव दो दिन आगे-पीछे उनके हृदयको विशुद्ध करके प्रेमपूर्ण बना देगा । इस प्रकार तुम अपना और उनका दोनोंका कल्याण करोगे और दोनोंको सुखी बना सकोगे । घृणाका बदला स्नेहसे दो, द्वेषका बदला प्रेमसे दो, क्रोधका बदला क्षमा तथा नम्रतासे दो, कठोरताका बदला मृदुतासे और रूक्षताका बदला मधुरतासे दो; हिंसाका बदला अहिंसासे, अपकारका उपकारसे, निन्दाका स्तुतिसे और शत्रुताका बदला मित्रतासे दो । ऐसा करके तुम अपना, उनका और जगत्का बड़ा भला करोगे । देशकी और भगवान्की भी तुम्हारे द्वारा यह बड़ी सेवा होगी ।

तुम्हारे हृदयके विचारों तथा तुम्हारी क्रियाओंकी प्रेम तथा हितरूप भलाईकी धारा क्रमशः एक विशाल नदी बन जायगी; उससे तुम्हें सात्त्विक सुधा मिलेगी और उसका वितरण करके तुम अपने आस-पास रहनेवालोंको ही नहीं, दूर-दूरके द्वेष-घृणारूप विषसे जर्जरित जगत्को विषरहित तथा अमृतरूप बना दोगे ।

वास्तवमें मनुष्यको वही मिलता है, जो वह दूसरोंको देता है । जैसे एक दाने बीजके फलरूपमें हजारों दाने मिलते हैं, इसी प्रकार मनुष्य जो कुछ देता है, भगवान्के विधानसे वही अनन्तगुना होकर उसे वापस मिल जाता है । अतएव तुम यदि प्रेम चाहते हो तो प्रेमदान करो, सुख चाहते हो तो सुखदान करो, सम्मान चाहते हो तो सम्मान-दान करो, आदर चाहते हो तो आदर प्रदान करो—तुम जो दोगे, वही अनन्तगुना होकर तुम्हारे पास लौट आयेगा । हम देना नहीं चाहते, केवल लेना चाहते हैं या दुःख देकर, घृणा देकर, अपमान देकर बदलेमें सुख, प्रेम तथा सम्मान चाहते हैं । सो भला कैसे मिल सकते हैं ?

अतएव भाई ! दूसरोंके दोष न देखकर अपने दोष देखो, दूसरोंके सुधारनेकी चिन्ता छोड़कर अपना सुधार करो, दूसरोंसे आशा न रखकर उनकी आशा पूर्ण करो, दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करो तथा अपने कर्तव्यका पालन करो—एवं भगवान्से प्रार्थना करो कि वे सबको सद्बुद्धि दें, सबका कल्याण करें; तो भगवत्कृपासे तुम्हारी सारी कठिनाइयाँ शीघ्र ही दूर हो जायँगी और तुम सचमुच शान्ति तथा सुख प्राप्त कर सकोगे ।

तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा । पर याद रक्खो—मानस दोषोंका प्रभाव शरीरपर अवश्य पड़ता है । मनकी सात्त्विकता तथा स्वस्थतासे शरीरकी स्वस्थतामें बड़ी सहायता मिलती है । शेष भगवत्कृपा ।

(२)

भगवान्की अखण्ड स्मृति क्यों नहीं होती ?

प्रियश्री··········सस्नेह यथायोग्य । आपके पत्र मिले । यह सत्य है कि 'आप भगवान्का अखण्ड स्मरण चाहते हैं, आपके मनमें इसके लिये छटपटाहट भी होती है, आप कभी-कभी बड़ी पीड़ा भी अनुभव करते हैं कि आपको यह स्थिति तुरंत क्यों नहीं प्राप्त हो जाती ? आप भगवान्की

कृपापर विश्वास करके अपनी इस सदिच्छाको अनन्य तथा निर्मल बनाते रहिये—भगवत्कृपासे आपको भगवान्‌की अखण्ड स्मृतिका प्राप्त होना कठिन नहीं है। पर इस समय जो आपको बाधा आ रही है, उसे आप गहराईसे देखेंगे तो आप जान सकेंगे कि लौकिक विषयोंको लेकर आपकी प्रतिकूल-भावनाजनित चित्तकी अशान्ति इसमें एक प्रधान कारण है। आप जानते हैं कि यहाँ फलरूपमें जो प्राप्त होता है, वह पूर्वनिश्चित होता है और अधिकांशतः अपरिवर्तनीय एवं अनिवार्य होता है एवं यह भी आप जानते हैं कि उसके किसी भी 'प्रिय' या 'अप्रिय' रूपसे आत्माकी दृष्टिसे आपका कोई लाभ या हानि नहीं होती। तथापि आप सभी कुछ अपने मनके अनुकूल चाहते हैं, जरा-सी भी मनके विपरीत बातको सहन नहीं कर सकते, अत्यन्त दुखी तथा अशान्त हो जाते हैं। भगवान्‌का मङ्गलविधान मानकर भी संतोष नहीं कर सकते। आपके हृदयमें अशान्तिकी एक अग्नि-सी धधकने लगती है, ऐसी अवस्थामें भगवान्‌की अखण्ड स्मृति कैसे होगी? उस समय सम्भवतः आप 'अखण्ड स्मृतिकी चाह' तकको भी भूल जाते होंगे।

यह याद रखना चाहिये कि मनुष्यके मनमें जहाँ राग-द्वेष होता है, वहाँ उसके निश्चय, निर्णय, विचार, कर्म—सभी राग-द्वेषसे प्रभावित होनेके कारण यथार्थ नहीं होते। राग-द्वेषका चश्मा उसे प्रत्येक स्थानपर बदला हुआ रंग दिखाता है और वह उसीको सत्य मानता है। भगवान्‌ने अर्जुनको सावधान करते हुए बहुत ही ठीक कहा है—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३४)

'प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें राग-द्वेष स्थित हैं, उनके वशमें नहीं रहना चाहिये। वे राहके लुटेरे हैं। (तमाम विवेक-धनको लूट लेते हैं।)'

राग-द्वेषके वशमें रहनेवाला पुरुष घोर विषमताकी आगमें जलता रहता है। रागकी वस्तुमें ममत्व और द्वेषकी वस्तुका विनाश चाहता रहता है। फलतः सदा अशान्त रहता है। रात-दिन एक दुःखके बाद दूसरे दुःखसे ग्रस्त होता रहता है। भगवान्‌ने कहा है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

(गीता २। ६४-६५)

'अन्तःकरणको वशमें किये हुए, राग-द्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ पुरुष प्रसादको—अन्तःकरणकी निर्मलता या प्रसन्नताको प्राप्त होता है और उस प्रसादसे सम्पूर्ण दुःखोंका नाश हो जाता है। ऐसे प्रसन्न-अन्तःकरण पुरुषकी बुद्धि भलीभाँति स्थिर हो जाती है।'

अतएव आप भगवान्‌का अखण्ड स्मरण चाहते हों तो अपने मनकी ओर देखकर उसमें रहे हुए इन दोषोंको निकालकर प्रसन्नता एवं शान्ति प्राप्त कीजिये। भगवान्‌में 'ममता' कीजिये, जगत्‌के द्वन्द्वोंमें 'समता' कीजिये; तो राग-द्वेष नहीं रहेंगे, फिर पाप तथा दुःख नहीं होंगे और भगवान्‌की परम मधुर अखण्डस्मृति अनायास प्राप्त हो जायगी, जो सहज ही भव-समुद्रसे तरनेकी मूर्तिमान् सजीव स्थिति है।

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भए भव पार॥

—शेष भगवत्कृपा

(३)

देवको जगाओ, असुरको नहीं

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि आपने अपने उक्त सम्बन्धी (परिवारके एक सदस्य) में जो कई दोष बतलाये, सो सम्भवतः वे दोष उनमें हो सकते हैं, न भी हो सकते हैं और आपकी अपनी ही धारणा उनके दोषोंका रूप धारण करके दीख सकती है अथवा थोड़े होनेपर बहुत ज्यादा दीख सकते हैं—पर मैं तो यहाँ आपसे यह कहना चाहता हूँ कि भगवान्‌की त्रिगुणात्मक सृष्टिमें कोई भी ऐसा प्राणि-पदार्थ नहीं है, जिसमें केवल 'तमोगुण' ही हो, 'सत्त्वगुण' हो ही नहीं; दोष-ही-दोष हों, गुण हों ही नहीं। सम्भव है—तमोगुण बढ़ा हुआ हो—सत्त्वगुण दबा हो; पर चेष्टा करनेपर तमोगुण दबकर सत्त्वगुण बढ़ सकता है। अतएव प्रत्येक हितैषीका यह कर्तव्य है कि वह अपने व्यवहार-बर्ताव तथा आचरणसे, (केवल उपदेशसे नहीं, डाँट-डपटकर नहीं, बहिष्कार और असहयोगसे नहीं) शुद्ध स्नेहसे, मधुर भाषण तथा स्नेहपूर्ण कर्मोंसे, हितपूर्ण सद्व्यवहारसे अपने उस सम्बन्धीके तमोगुणको दबाये और सत्त्वगुणको बढ़ाये। आप किसीको दोषी साबित करके उसके दोषोंकी घोषणा करके उस दोषको उसके पल्ले बाँध देते हैं और उसके पतनमें सहायता ही नहीं करते वरं

धक्का देकर उसे पतनके गर्तमें गिरा देते हैं। आपकी इस चेष्टासे वह पहले न भी रहा हो तो पीछे वैसा दोषी बन जाता है।

जैसे किसी साधारण रोगीको डाक्टर-वैद्य तथा देखनेवाले यह कहने लगें कि 'तुम्हारा रोग असाध्य है, तुम अच्छे हो ही नहीं सकते। करना है सो कर लो, पता नहीं कब दम टूट जाय।' तो वह रोगी सचमुच असाध्य बन जायगा और यों सहज मृत्युके मुखमें चला जायगा। किसी परीक्षार्थी-विद्यार्थीको कहिये कि 'तुम जरूर फेल होओगे, तुम क्या पर्चों-का उत्तर लिखोगे, सर्वथा अयोग्य हो तुम' तो उसका उल्लास मर जायगा और वह या तो परीक्षामें बैठेगा ही नहीं, यदि बैठेगा तो निराशमन होनेसे उत्तर ठीक नहीं लिख सकेगा और फेल हो जायगा। रणमें जाते हुए सैनिकोंका उत्साह गिरानेके लिये उन्हें शत्रुकी शक्तिका, उसके रण-कौशलका बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन कीजिये और उनका, वे अवश्य हारेंगे—ऐसा विश्वास दिलाइये तो उनका साहस टूट जायगा और वे अवश्य ही पराजित होंगे।

पक्षान्तरमें आप उसके भीतर सोयी हुई सात्त्विक वृत्तियोंको, शुद्ध शक्तियोंको जगाकर उसे उनका ज्ञान करा दें और उसके हृदयको उत्साह-उल्लास, सात्त्विक उमंगसे भर दें तो वह दोषोंसे रहित आदर्श सद्गुणोंकी खान बन सकता है।

किसीको न कोसना चाहिये, न बार-बार उसे अयोग्य बताना चाहिये, न अभागा कहना चाहिये, न कभी यह कहना चाहिये कि वह पतित ही रहेगा, उठेगा ही नहीं, या उसका पतन निश्चित है, न उसके दोषोंको सिद्ध करके उसे अपमानित या बदनाम ही करना चाहिये। किसीको कमजोर न बनाकर साहसी बनाइये, किसीको दुर्बल न बनाकर शक्तिमान् बनाइये। मनुष्यके अंदर देव भी है, असुर भी। आप उमड़े हुए उसके असुरको दैवी भावनाके द्वारा मारिये और सोये हुए देवको जगाइये। उसे सर्वथा सुयोग्य, कर्मठ, सदाचारी बना दीजिये—यह बड़ी सेवा होगी। ऐसा बननेकी सामग्री—देवभाव उसके अंदर मौजूद है, उसे जगाकर कार्यक्षम बनानेकी जरूरत है। अतएव मेरा यह नम्र निवेदन है कि आप उपर्युक्त रीतिसे अपने उन सम्बन्धीके गुणोंका विकास करके उन्हें सच्चा मानव बनानेमें सहायता कीजिये। उन्हें असुर न बनाइये। मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि आपकी आँखें उनको जैसा जितना दोषी मानती हैं, उनमें उतने दोष तो है ही नहीं, कई गुण भी हैं, जो आपकी दृष्टिसे ओझल हो रहे हैं। यदि आप गहराईसे देखें तो जो दोष आप उनमें देखते हैं, प्रायः वही या वैसे ही दोष आपमें भी हैं। आप गहराईसे विचार करके अपना कर्तव्य निश्चित कीजिये, जिसमें आपका और उनका—दोनोंका भविष्य बिगड़े नहीं, वरं परमोज्ज्वल हो।

शेष भगवत्कृपा।

(४)

भारतका राष्ट्रीय गान

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। मैंने आपको पहले लिखा था, वही बात अब भी लिखता हूँ। जहाँतक मुझे पता है, हमारा वर्तमान 'जन-गण-मन-अधिनायक' राष्ट्रीय गान वास्तवमें राष्ट्रीय गानके रूपमें लिखा ही नहीं गया था। यह तो इंगलैंड-नरेश तथा भारतके विदेशी सम्राट् पञ्चम जार्जके भारत आनेपर उनकी वन्दनामें कविके द्वारा वैसे ही लिखा गया था, जैसे राजा-बादशाहोंकी स्तुतियाँ की जाती हैं। कविकी दृष्टिमें उस समय इस गानके 'जन-गण-मन' के 'अधिनायक' विदेशी अंग्रेज पञ्चम जार्ज थे—जिनके शासनसे मुक्त होनेके लिये भारत-राष्ट्रमें त्यागकी बाढ़ आ गयी थी तथा हजारों-हजारों नवयुवकोंके अस्थि-मांस मातृभूमिके मुक्तिप्रासादमें नींवके पत्थर बने थे और जिनके रक्तसे वह नींव मजबूत की गयी थी। सच्ची बात तो यह है कि यह गान राष्ट्रगान नहीं है—गुलामीकी स्मृति करानेवाला है। यह बात मैंने, जिस समय यह गान राष्ट्रीय गानके रूपमें लिया जा रहा था, उस समय भी देशके एक वरिष्ठ नेताको बतलायी थी, पर कोरसके गानेमें यह ठीक बैठता था और हमारे सम्मान्य विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथकी रचना थी, इससे इसे स्वीकार कर लिया गया। वास्तविक राष्ट्रीय गान तो 'वन्दे मातरम्' था—जिसे देशप्राण श्रीबंकिमचन्द्र चटर्जी महोदयने अपने 'आनन्दमठ' नामक उपन्यासमें देशके लिये बलिदान होनेको तैयार होनेवाले तरुणदलके गानके लिये निर्माण किया था—जिसमें देशमाताके वास्तविक स्वरूपका वर्णन था। यद्यपि इस क्षेत्रसे मेरा आजकल कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि आपकी भाँति कोई मुझसे पूछते हैं तो मैं तो नम्रतासे यही कहनेको बाध्य होता हूँ कि 'जन-गण-मन-अधिनायक' विश्वकविकी रचना होनेपर भी भारतका राष्ट्रीय गान कदापि नहीं है। अतः राष्ट्रीय गानके रूपमें 'वन्दे मातरम्' ही गाना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

हो गया 'स्वराज्य', अब 'सुराज' चाहिये

(रचयिता—स्वर्गीय विद्यावाचस्पति डा० श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्०)

पड़ा अहिंसा-यज्ञमें, सत्य-धर्मका आज्य।
हाँ 'स्वराज्य' तो हो गया, हुआ न किंतु 'सुराज्य'॥

कूटनीति रम रही, न सत्य शेष है,
सत्त्वका न काम कहीं, छद्मवेश है।
सुख-समृद्धिका न नाम, कष्ट-क्लेश है,
हाय! दुःख सह रहा स्वतन्त्र देश है।
भाषणोंकी भूख नहीं, नाज चाहिये—
हो गया 'स्वराज्य', अब 'सुराज' चाहिये॥

हाय! 'हाय-हाय' कर कराह सब रहे,
इस प्रकार हाय! हम तबाह कब रहे!
भ्रष्टताकी भूतनी किलकार रही है,
द्वेष-दम्भ-नीति हमें मार रही है।
इस विपत्ति-वज्रपातसे बचाइये–
हो गया 'स्वराज्य', अब 'सुराज' चाहिये॥

मिल रहीं न शुद्ध वस्तु, भाव चढ़ रहे,
हो रहे अनर्थ, अनाचार बढ़ रहे।
चोर-जार, डाकुओंका वेग बढ़ा है,
स्वार्थ-सिन्धुओंसे हाय! काम पड़ा है।
बिगड़े समाजका प्रभो! बानिक बनाइये–
हो गया 'स्वराज्य', अब 'सुराज' चाहिये॥

नौकरी, उद्योग या व्यवसाय नहीं है,
लाखों गरीब रो रहे, कुछ आय नहीं है।
चिथड़ोंका है अभाव, न रहनेको झोंपड़ा—
हा देशवासियो! पै ये संकट बड़ा पड़ा।
बेकार व्यक्तियोंको काम-काज चाहिये–
हो गया 'स्वराज्य', अब 'सुराज' चाहिये॥

शिक्षाका न आदर्श न ऊँचा महत्त्व है,
इन थोथी पोथियोंमें न कुछ तथ्य—तत्त्व है।
परदेशियोंकी सभ्यता सबपर सवार है,
भारतकी भावनाओंपर ममता न प्यार है।
इस दास-मनोवृत्तिको मनसे मिटाइये—
हो गया 'स्वराज्य', अब 'सुराज' चाहिये॥

जिससे हुए स्वतन्त्र, वह तप-त्याग नहीं है,
सहयोग या सहकार न अनुराग कहीं है।
सद्धर्म न सद्भाव न श्रद्धाका नाम है,
बस, रात-दिवस स्वार्थदेवको प्रणाम है।
'मानवता' मर रही, इसे अमृत पिलाइये—
हो गया 'स्वराज्य', अब 'सुराज' चाहिये॥

आशा थी जब स्वराज्यका सुख-सूर्य उगेगा,
सोये हुए स्वदेशका सौभाग्य जगेगा।
हो जायगी धन-धान्यसे भरपूर भारती,
हँस-हँस 'स्वतन्त्रता'की उतारेंगे आरती।
गांधीके भक्त होके न गौरव गिराइये—
हो गया 'स्वराज्य', अब 'सुराज' चाहिये॥

राजनीति प्रीतिका विनाश कर रही,
धर्महीन हाय! हो हताश कर रही।
द्वेष-दम्भसे न कभी काम चलेगा,
सत्य-सूर्यसे ही सुख-सरोज खिलेगा।
'रामराज्य'का सुदृश्य फिर दिखाइये–
हो गया 'स्वराज्य', अब 'सुराज' चाहिये॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

हानि-लाभ, जीवन-मरन, जस-अपजस बिधि हाथ ।

परमात्माकी याद मनुष्य दुःखमें तो अवश्य करता है; पर जैसे ही सुखके दिन आते हैं, वह परमात्माको भूलकर अपने क्षणिक सुखोंमें रमा रहना चाहता है। वह सोच भी नहीं पाता कि यह सब ठाट झूठा और काल्पनिक है। वह तो मृगतृष्णामें सुखोंके पीछे भागा फिरता है। यह निश्चय है, भोगोंकी अधिकता अहंकारको जन्म देती है, जिसके मूलमें यह भाव रहता है कि यह वैभव, यह समृद्धि मैंने ही अपने प्रयाससे एकत्रित की है, इसमें किसी अन्यका कोई सहयोग नहीं। इस प्रकारकी धारणा व्यक्तिमें अहंता लाती है। वह अपनेको सुख, लाभ और यशका अर्जनकर्ता मानता है तथा दुःख, हानि और अपयशके लिये ईश्वरको उत्तरदायी ठहराता है। मानवकी कैसी-कैसी विचित्र धारणाएँ हैं ?

इस संदर्भमें मुझे एक ऐसी सच्ची घटनाकी रह-रहकर याद आती है या यों कहिये उपर्युक्त कथनकी सत्यतामें विश्वास जमानेके लिये ही मैं इस सत्य घटनाको लिखनेके लिये लालायित हूँ। भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' कहकर मनुष्यको सभी कर्मोंको ईश्वरके समर्पण करनेकी आज्ञा दी है। ईश्वर ही सृष्टिका नियन्ता है, सर्वव्यापक है। तब मनुष्यकी क्या शक्ति है कि वह कुछ भी कर ले। किंतु आजके बौद्धिक युगमें यह श्रद्धाभाव तर्ककी झंझाओंमें उड़ा जा रहा है। वादोंकी गर्जनामें भक्तिका स्वर नक्कारखानेमें तूतीका नाद है। आज विज्ञानयुगका मानव प्रकृतिपर कुछ सफलता प्राप्त करके नशेमें ईश्वरको भूल गया है। पर यह भूलना ही उसकी भूल है। यदि ऐसा नहीं तो जीवनमें ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएँ कैसे घटित हो जाती हैं, जिनसे जीवनका रुख ही बदल जाता है। निश्चय ही परमात्मा है और हमें जीवनमें सरलता, सादगी, सत्यता लानेके लिये उसपर विश्वास रखना चाहिये तथा उसकी आज्ञाका पालन करना चाहिये।

जिस घटनाका उल्लेख मैंने ऊपर किया है, वह इस प्रकार है। एक व्यक्ति था, जिसका नाम 'मोहन' ही समझ लीजिये। यह एक गरीब छात्र था, जिसपर अपने परिवारके पालन-पोषणके उत्तरदायित्वके साथ पढ़ाईका बोझ भी था। शिक्षा-प्राप्तिकी एक तीव्र उत्कण्ठा हृदयमें लिये नौकरी करता हुआ मोहन उचित समयकी प्रतीक्षामें आशान्वित था। उसका एक छोटा भाई सोहन भी था। मोहनकी तीव्र अभिलाषा थी कि जिस प्रकार वह धनाभावके कारण उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाया, ऐसा अत्याचार वह अपने भाईपर नहीं होने देगा। अपने प्रारम्भिक जीवनमें उसे ईश्वरपर गहरी आस्था थी, लेकिन निरन्तर मुसीबतोंने इस आस्थाको हिला दिया और वह ईश्वरमें विश्वास कम करने लगा। यद्यपि संस्कारोंकी छाप अभी मिटी नहीं थी, फिर भी उसने इतना निश्चय कर लिया था कि मेरा भाई धनाभावके कारण इस प्रकार वञ्चित नहीं रह सकता। अपनी इस धारणाको फलीभूत करनेके लिये उसने कार्यालयके अलावा अत्यधिक कठोर परिश्रम करके धन-अर्जन करना शुरू किया एवं इसी मध्य स्वयं सर्वाधिक अङ्क प्राप्त कर बी० ए० पास किया। बी० ए० के शिक्षाकालमें उसका सम्पर्क एक ऐसी विदुषी लड़कीसे हुआ, जिसने उसे प्रेरणा देकर अन्तिम स्थितिपर पहुँचा दिया। आवश्यक है कि ऐसे व्यक्ति और उसके परिवारके प्रति मोहनके हृदयमें आकर्षण उत्पन्न हो। धीरे-धीरे यह आकर्षण बढ़ता ही गया। मोहनने अपना तन-मन-धन देकर उक्त महिलाको एम्० ए० कराया। व्यक्तिगत श्रद्धा पारिवारिक स्नेह बनती गयी। इसी बीच मोहनने एम्० ए० परीक्षा सर्वाधिक अङ्क प्राप्त-कर फर्स्ट डिवीजनमें पास की। उसके छोटे भाई और बहिनने भी प्रथम स्थान प्राप्त किये।

सारे शहरमें मोहनने अपना एक स्थान बना लिया। सर्वत्र यश छाया था। सभी लोग उसकी प्रशंसाके पुल बाँधने लगे थे। इससे मोहनके मनमें अहंकारके बीज पनपने लगे। वह सोचने लगा कि अनेक आपत्तियों और बाधाओंके बावजूद भी उसने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। परीक्षाकालमें कुछ ऐसी बाधाएँ आयीं, जो निश्चय ही भयंकर थीं, और जिनमें यह पिताकी मृत्यु और पुत्रकी रोगग्रस्तता मुख्य थीं। इस धारणाने अहंकारको जन्म दिया। ईश्वरपर आस्था प्रायः समाप्त-सी हो गयी। 'मैं' बढ़ गया। वह अपनेको इस सुख

और यशका निर्माता समझकर प्रसन्न होने लगा। ईश्वर सब कुछ सहन कर सकता है; पर अहंकारसे उसे विशेष घृणा है। अहंकारकी भावना उसे तनिक भी सहन नहीं और फिर अपने भक्तको तो वह कुमार्गपर जाते हुए देख ही नहीं सकता।

कुछ दिनों बाद ही जिस लड़कीका ऊपर जिक्र आया है, उसकी शादी एक सुशिक्षित सुशील व्यक्तिके साथ सम्पन्न घरानेमें हुई। मोहनने अपना हर प्रकारका सहयोग दिया और रात-दिन कठिन परिश्रम करके उत्सवको शोभनीय बनाया। लड़की ससुरालसे वापस आयी। वह काफी जेवर अपने साथ लायी थी। उसके परिवारमें सुरक्षाका प्रबन्ध नहीं था, अतः परिवारवालोंने यह निर्णय किया कि जेवर किसी सुरक्षित स्थानपर रख दिया जाय। सारे जेवरका बैंकमें रखा जाना निश्चय किया गया। परंतु दुर्भाग्य या सौभाग्यवश जेवर मोहनके पास रख दिया गया। एक दिन भूलसे वह जेवर बाहर रक्खा रह गया, जिसकी कोई आशा न मोहनको थी और न किसी अन्यको। उसे कोई उठा ले गया। कुछ दिन पश्चात् मोहनको इस अप्रत्याशित दुर्घटनाका पता चला। यह सूचना उस परिवारमें भेज दी गयी तथा मोहनने इस नुकसानको पूर्ण रूपसे पूरा करनेका आश्वासन ही नहीं दिया, वायदा भी किया। किंतु दुर्विपाकसे उस परिवारका विश्वास मोहनपरसे बिल्कुल उठ गया। उनके मनमें यह धारणा पैदा हो गयी कि उक्त जेवर मोहनने दबा लिया है। संदेहका यह बीज शीघ्र ही वृक्ष बन गया तथा उसमें फल भी लटकने लगे। मोहनको अपराधीके रूपमें प्रस्तुत किया गया। उसने तो पहले ही हानिको पूरा करनेका वचन दे दिया था, वही फिर कह दिया। कुछ लोगोंने उसे मुकर जानेकी सलाह भी दी, पर बद्धमूल संस्कारोंने उसे सचाईपर टिकाये रक्खा। सैकड़ों व्यक्तियोंने उसका जो अपमान किया, उसने उसकी प्रतिष्ठाको बड़ी क्षति पहुँचायी। फैसला हुआ एकपक्षीय। फैसला था भी क्या, जब व्यक्ति पहलेसे देनेको ही तैयार है। उक्त महिलाके कथनके बावजूद भी जेवरसे अधिक धन मोहनसे माँगा गया। आप चाहे कुछ भी मानिये, मैंने उसकी बरबादीका जो तमाशा उस समय देखा, वह आज भी भुलाये नहीं भूलता।

इस प्रकार वह सारा धन जो तिनका-तिनका चुनकर महल बनानेके स्वप्नको सत्य करनेके लिये अर्जित किया था, चला गया और साथमें मिला भारी अपयश। शहरमें जहाँ उसकी प्रतिष्ठा थी, वहाँ अब बदनामी है। लोग उसका नाम घृणासे लेते हैं। पर ईमानदारीका जो पुरस्कार उसे मिला है, उसका प्रभाव उसके ऊपर ऐसा अच्छा पड़ा कि उसके जीवनका पृष्ठ ही पलट गया।

अब उसके मनमें यह धारणा जम गयी, जिसे कोई भी अनास्था उखाड़ नहीं सकती कि ईश्वर ही सर्वनियन्ता है। वह जो चाहता है, वही होता है। मनुष्यका अहंकार व्यर्थ है। ईश्वरका विधान ही प्रबल है। तुम शासन अपने हाथमें लेना चाहते हो। पर तुम ऐसा नहीं कर सकते। आज मोहनके मनमें गीताका निष्काम कर्मयोग जमता जा रहा है और उसके मुँहसे बस, एक ही बात निकलती है—

हानि-लाभ, जीवन-मरन, जस-अपजस बिधि हाथ।

पश्चात्तापके अश्रुओंमें उसका सारा अहं गलकर बह गया। शेष है—श्रद्धावनत हृदयमें ईश्वरसे क्षमा-याचना। अपने संचित कर्मोंके फलोंके भोगकी इच्छा।

—एक अनुभवी

(२)

साहस, एकता और परिश्रमका सुपरिणाम

हमारे विभागमें नहर आयी। परंतु किसान उस जलका उपयोग नहीं कर सकते थे। एक स्थानपर नहरकी जमीन ऊँची रह गयी थी, इसलिये जल आगे नहीं बढ़ता था। परंतु इस इलाकेमें जमीन बहुत थोड़ी है और वह भी छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बँटी हुई, इसलिये किसानोंको जलके सम्बन्धमें विशेष चिन्ता नहीं है। चिन्ताकी बात यह थी कि गरमियोंमें तालाबका जल सूख जाता, इससे कुँओंकी भी तलभूमि दीखने लगती। इसके परिणामस्वरूप पशु और मनुष्य सभीपर कठिनाई आ पड़ती। अतएव गाँवके लोगोंके मनमें एक अच्छा विचार आया कि यदि इस नहरमें जल आ जाय और उससे तालाब भर लिया जाय तो कठिनाई दूर हो सकती है। प्रयत्न शुरू हो गया। नगर-विभागसे अनुमति भी ले ली गयी। मजदूर नहरपर काम करने लगे। एक-आध महीना बीता, पर जल तो आगे बढ़ा ही नहीं।

सभी विषादमें पड़ गये कि अब क्या किया जाय। और इसका भी एक रास्ता सूझ गया। हाईस्कूलके बोर्डपर

एक सूचना लिखी गयी कि अमुक दिन गाँवके सब लोगोंको नहरमें काम करने आना है। कुछ निराशावादी कह रहे थे—'इस वर्ष तो तालाबमें जल शायद ही आये।'

परंतु निश्चित दिनपर बड़े उत्साहके साथ लोग नहरपर काम करने आ गये। बड़ी संख्यामें उमड़ते हुए इस जन-समूहमें सभीके मुखपर उत्साह तथा आशाके चिह्न स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। पूरे जोशके साथ काम चलने लगा। बहुत सबेरे कामपर लगे तो दुपहरको एक बजेतक किसीको खाने-पीनेकी भी चिन्ता नहीं हुई। नहरकी ऊँची जमीन अब समान दिखायी देने लगी।

लोगोंने बड़े उत्साह तथा परिश्रमके साथ तीन दिनोंतक काम चालू रक्खा। जल आने तो लगा, परंतु जहाँ-तहाँ फूटने लगा और जहाँ फूटता, वहीं नयी मिट्टी डालकर उसे अटकाना पड़ता। किंतु लोग हिम्मत हार जायँ, ऐसी बात नहीं थी। अन्तमें थोड़ा-थोड़ा जल तालाबमें आने लगा। तरुणवर्ग रात्रिको बारह बजेतक जागता रहकर जहाँ जल फूटता वहीं नयी मिट्टी डालकर उसे रोक देता। एक जगह बड़ी दरार पड़ गयी, सबेरे ही लोहेकी पत्तियाँ तथा मिट्टी डालकर वह दरार भर दी गयी।

अब तो जोरसे जल आने लगा। लोगोंका मन-मयूर नाच उठा। बालकोंको बड़ा मजा आया। तालाबमें कपड़े धोये जायँ, इतना जल आ गया। अविश्वास और शङ्का रखनेवाले लोग आश्चर्यचकित रह गये। जो काम मजदूर नहीं कर सके, वह काम गाँवकी समग्र शक्ति और एकताने सम्पन्न कर दिया। एकताकी विजय हुई। मूक पशुओंको आराम हो गया। 'अखण्ड आनन्द'

—एच्. यू० पटेल

(३)

करनीका फल

एक धनी व्यापारी थे—नाम-पता जानकर नहीं लिखा जा रहा है। अब भी उनके पास बड़ी सम्पत्ति है। पर एक साधुका अपमान करनेसे उसका कितना बुरा परिणाम उन्हें भोगना पड़ा—यही इस घटनाका सारांश है। इस घटनाको इसीलिये लिखा जा रहा है कि हमलोग कभी किसीका अपमान करके उसका जी न दुखायें।

एक दिन उसकी दूकानकी बैठकके बाहर एक फकीर आया। गरमीके दिन थे। उसने वहाँ बैठकर दरवानसे पानी माँगा। दरवानने पानी ला दिया। फकीर वहींपर अपने टूटे गिलासमें शक्कर मिलाकर शर्बत बनाने लगा। इतनेमें वे व्यापारी मालिक आ गये और क्रोधमें भरे गरजकर फकीरसे बोले—'अंधा है, यहाँ शर्बत बना रहा है? मक्खियाँ भिनभिनायेंगी। जगह सब खराब कर रहा है।' यों कहकर उन्होंने फकीरको ठोकर मार दी। फकीर चुपचाप उठा और यह कहता हुआ वहाँसे चला गया कि 'तुम्हारी यह ठोकर ही न रहेगी।'

दूसरे ही दिन उन व्यापारीका पाँव फिसला। एक दो मास इलाज चला, परंतु कोई लाभ न हुआ। उनकी टाँगमें कीड़े पड़ गये। कुछ महीनोंके बाद डाक्टरोंने कहा कि 'इनकी टाँग काट दी जाय।' पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। कुछ ही दिनोंमें वह विष पूरी टाँगमें फैल गया। डाक्टरोंका बोर्ड बैठा। यह तय हुआ कि अब इनकी मृत्यु हो जानी चाहिये, नहीं तो इनके घरभरमें यह बीमारी फैल जायगी। इंजेक्शन दिये गये और कुछ समय बाद उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी।

अब उनके पुत्रादि साधु-फकीरोंकी बहुत आवभगत करते हैं और दान-पुण्य भी काफी करते रहते हैं।

—नरेशकुमार राधू

(४)

प्रार्थनाका प्रताप

[बाढ़ और साँपसे रक्षा]

इस वर्ष वर्षाधिक्यके कारण बाढ़ बहुत आयी। जिस क्षेत्रमें मेरा ग्राम अरुआ खास है, उस क्षेत्रमें बड़े जोरोंसे बाढ़ आयी थी। उस दिन बाढ़ रात्रिके समय एकदम अचानक ही आयी थी। मेरा पड़ोसी हुक्मचंद नित्यप्रति अपने खेतोंपर रात्रिको सोया करता था। उस रातको भी वह अपने खेतोंपर सोया हुआ था। बाढ़का जल आया और बड़ी तेजीसे बढ़ने लगा; किंतु हुक्मचंदको कुछ पता नहीं लगा। वह बराबर घोर निद्रामें सोता रहा। जब पानी उसकी चारपाईके नीचे आया और ऊपर उठने लगा एवं

चारपाईपर उसकी पीठको स्पर्श करने लगा तब वह एकदम जगा और चारों ओर देखने लगा।

पौ फट चुकी थी। दूर-दूरतक हिलोरें लेती हुई जल-राशिको देखकर वह डर गया। चारपाईसे खड़ा हुआ और प्राण-रक्षाके लिये गाँवकी ओर भागा; किंतु पानी बड़ी तेजीसे बढ़ रहा था। केवल १०० गज ही चलने पाया होगा, वह पानीमें डूबने लगा। हुक्मचंद घबराया और प्राण बचानेके लिये एक वृक्षपर चढ़ गया। वृक्ष छोटा था, वह वृक्षके बीचमें बैठ गया।

जब हुक्मचंदने नीचेकी ओर देखा, जल बराबर बढ़ता चला आ रहा था। केवल उससे कुछ इंच ही रह गया था। घबराकर ऊपर चढ़नेके लिये ऊपरकी ओर देखा तो क्या देखता है कि वृक्षके ऊपर दो भयंकर काले साँप जीभ निकाले बैठे हैं। हुक्मचंद सन्न रह गया। उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। अब उसने न ऊपर देखा और न नीचे। वह सोचने लगा कि आज निश्चय ही मेरी मृत्यु है। या तो पानी ऊपर बढ़ेगा और मुझे बहा ले जायगा अथवा ऊपरवाले विषैले सर्प मुझे काट लेंगे। मरनेके समयपर रामनाम लेना चाहिये। ऐसा सोचकर आँखें बंदकर वह 'हे राम! हे राम!' का जप करने लगा।

घोर विपत्तिका समय। कहीं कोई आशा नहीं, उसका मन पूर्णरूपसे जपमें लग गया। अब सुबह हो चुका था। सात बजे थे। चारों ओर बाढ़से बचनेका प्रयत्न किया जा रहा था। बड़ा शोर था। मैं भी कुछ समाज-सेवकोंको लेकर लोगोंकी सहायता करनेमें लगा हुआ था। मेरा घर गाँवमें सबसे ऊँचे स्थानपर बना हुआ है। जब मैंने अपने घरकी छतपर चढ़कर बाढ़के प्रकोपको देखा, तब मुझे एक वृक्षपर एक व्यक्ति नजर पड़ा। बस, मैं एक नाव लेकर तथा दो सेवकोंको साथ लेकर तुरंत उस वृक्षकी ओर चल दिया। वृक्षके नीचे पहुँचकर देखा तो मालूम हुआ कि वृक्षके ऊपर मेरा पड़ोसी हुक्मचंद आँख मीचे ध्यानमग्न है। पानी नीचेसे जोरोंके साथ बढ़ रहा है और ऊपर दो काले नाग बैठे हैं। हुक्मचंद इतना ध्यानमग्न था कि उसे हमारे पहुँचनेतकका आभास नहीं हुआ। मैंने हुक्मचंदको बड़े जोरोंसे आवाज दी, उसने आँखें खोलीं, उसकी आँखोंसे आँसू बह निकले। हमने उसको अपनी नावपर उतारा और उसे सुरक्षित गाँवको ले आये। सच्चे हृदयसे की हुई प्रार्थनाके प्रतापसे न तो उसे साँपोंने ही काटा और न बाढ़के पानीने उसे बहाया।

—दुर्गाप्रसाद विशारद, एम्० ए०, एल्० टी०, सा० रत्न

(५)

कैन्सरकी दवा तुलसी !

कैन्सर इस युगमें एक असाध्य रोग माना जाता है। इस रोगके प्रतीकारमें तुलसीके पत्ते अक्सीर उपाय हैं— ऐसा जाननेमें आया है।

एक केसमें डाक्टरोंने निदान किया कि इनको कैन्सर है। रोगीको ताता अस्पताल (बंबई) में रक्खा गया। कुछ आराम हुआ। परंतु पुनः रोगने आक्रमण किया। डाक्टरोंने कह दिया कि 'ईश्वरपर भरोसा रखकर इलाज कराते रहो।'

ऐसे रोगीपर नीचे लिखे अनुसार प्रयोग करनेसे इतना अधिक लाभ हुआ कि आज वह सत्तर वर्षकी उम्रमें खाता है, पीता है और चलता-फिरता है।

प्रयोग—तुलसीके ३० से ३५ पत्तोंको दही मथकर किये हुए मट्ठेमें मसलकर उस मट्ठेको पी जाना। सुबह और शाम यह प्रयोग करना। दूध और दही लगभग एकसे डेढ़ कीलो खुराकमें लेना। यों करनेपर थोड़े ही समयमें आराम होने लगा। तेल, मिर्च आदिका सेवन नहीं करना चाहिये।

जोरावर नगरके मेरे एक प्रेमी सज्जनको कैन्सर हो गया। उन्होंने ताता अस्पतालमें ४३ लाइट लीं। परंतु आराम न दीखनेपर सहज हताश हो गये। पीछे उन्होंने उपर्युक्त प्रयोग शुरू किया और आज वे खाते हैं, पीते हैं और बोलचाल भी सकते हैं। ऐसा लगता है मानो नया जीवन मिला हो। 'अखण्ड आनन्द'

—पुरुषोत्तम लालजी बाबीशी

'कल्याण'के आजीवन ग्राहक बनिये

'कल्याण' अङ्क ३ में प्रकाशित सूचनाके अनुसार आजीवन ग्राहक बनने आरम्भ हो गये हैं। आजीवन ग्राहक बननेवालोंको इस बार कई विशेष सुविधाएँ दी गयी हैं। अतएव सब प्रेमियोंसे निवेदन है कि वे स्वयं एक सौ पच्चीस (सजिल्द लेना हो तो एक सौ पचास) रुपये भेजकर आजीवन ग्राहक बनें तथा अपने मित्र-सम्बन्धियोंको बनानेकी कृपा करें।

निवेदक

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

अर्धाङ्गवायु या लकवाके काढ़ेकी मुख्य ओषधि बायसुरई

'कल्याण'के पिछले (गतवर्षका १२वाँ अङ्क, पृष्ठ १३९९ और गत चतुर्थ अङ्क, पृष्ठ ४९२) अङ्कोंमें प्रकाशित लकवाके काढ़ेकी मुख्य ओषधि 'बायसुरई'की बड़ी खोज हो रही थी। हर्षकी बात है कि प्रसिद्ध पं० श्रीरामनारायणजी वैद्यके ज्येष्ठ पुत्र पं० श्रीव्रजेन्द्रकुमार शर्माने अपने 'श्रीशर्मा आयुर्वेद-मन्दिर'के द्वारा उसे बिना मूल्य देनेकी व्यवस्था कर दी है। इसके लिये उन्हें धन्यवाद है। वे लिखते हैं—

'बायसुरई नामक ओषधि हमारे यहाँसे १०० ग्राम बिना मूल्य भिजवा दी जायगी। सिर्फ पोस्टेज और पैकिंगके लिये १ रुपया २५ पैसे टिकटद्वारा या मनीआर्डरद्वारा पहले भेजने पड़ेंगे। जिनको आवश्यकता हो वे 'श्रीशर्मा आयुर्वेद-मन्दिर' पो० दतिया (म० प्र०) को एक रुपया पचीस पैसे पोस्टेज, पेकिंग-खर्च भेजकर दवा मँगवा सकते हैं।'

सूचना

बिना चर्बीकी साबुन कहाँ-कहाँ बनती है, इसके सम्बन्धमें मईके अङ्कमें सूचना देनेकी बात थी, पर कई कारणोंसे वह नामावली ठीक तैयार नहीं हो पायी, अतएव उसे जूनके अङ्कमें प्रकाशित करनेका विचार है।

क्षमा-प्रार्थना

पिछले दिनों गीताप्रेसमें हड़ताल होनेके कारण कई सप्ताहतक प्रेस बंद रहा। इससे कल्याण-विशेषाङ्कके प्रकाशनमें अवाञ्छनीय विलम्ब हो गया और उसीके अनुपातसे ग्राहकोंके पास अङ्क देरसे पहुँचा। चेष्टा करके तीन अङ्क तो साथ भेजे गये। पर वी० पी०के रुपये लौटनेमें देर होनेके कारण अगले अङ्क समयपर नहीं जा सके। जितने ग्राहकोंके रुपये कार्यालयमें आ चुके हैं और जिनके नाम दर्ज हो चुके हैं, उनको अप्रैल और मईके अङ्क अलग-अलग भेजे जा रहे हैं। इनमें मईके अङ्कमें तो विशेष विलम्ब नहीं हुआ है, पर अप्रैलका अङ्क तो देरसे ही पहुँचेगा। हमारी विवशतासे जो यह विलम्ब हो गया है, इसके लिये 'कल्याण'के ग्राहक-पाठक कृपापूर्वक क्षमा करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

एकादश कल्याण-सूत्र

१–विश्वके प्राणिमात्रमें भगवान् हैं। अतएव सबके साथ सदा सद्व्यवहार करो। सबका सम्मान करो, सबका हित करो। असम्मान, अहित, हिंसा किसीकी किसी प्रकारसे कभी मत करो।

२–तुम्हारे अंदर जो आत्मा है, वही सबके अंदर है। अतएव सबके साथ सदा 'आत्मोपम' व्यवहार करो।

३–शास्त्र तथा धर्मकी दृष्टिसे सभी हिंदू एक हैं। वेद, शास्त्र, स्मृति, पुराण, ऋषि, अवतार सबके एक ही हैं। अतएव भाषा, प्रदेश या अन्य किसी भी राजनीतिक अथवा दूसरे किसी भी कारणसे एक-दूसरेपर न कभी आक्रमण करो, न आघात करो। कुम्भमें जैसे दक्षिण-उत्तर, पूर्व-पश्चिम सभी प्रदेशोंके विभिन्न भाषा-भाषी लोग एक ही साथ प्रेमपूर्वक तीर्थमें पुण्य-स्नान करते हैं, वैसे ही सदा सब पवित्र प्रेममय जीवन-यापन करो।

४–विद्यार्थी ही देशके प्राण हैं, समाज तथा देशका भविष्य उन्हींके चरित्रपर निर्भर है। हमारा विद्यार्थी-समाज जैसा होगा, वैसा ही हमारा भविष्य होगा। अतएव विद्यार्थी-समाजमें अनुशासन, सदाचार, नैतिकता, पवित्रता, प्रेम और त्याग हो, इसके लिये समाजके अग्रणी पुरुष, माता-पिता, अभिभावक, देशके नेतागण, आचार्य और गुरुवर्ग विशेष सोच-विचारकर समुचित व्यवस्था करें। अपने ऊँचे चरित्रसे उनको चरित्रवान् बनावें। जहाँतक हो सके, विद्यार्थी-समाजको राजनीतिके विषसे अलग रक्खें।

५–सत्य, ईमानदारी समाज और देशकी उच्चताके परिचायक हैं। अतएव प्रत्येक परिस्थितिमें सत्य और ईमानदारीकी रक्षा करो। किसी भी भय या प्रलोभनसे इनका जरा भी ह्रास, विनाश कभी मत करो।

६–मिथ्या आडम्बर, खर्चीले तथा असंयमी जीवन तथा अनावश्यक अभावोंको छोड़कर सदा सादा, शुद्ध, कम खर्चका संयमपूर्ण आदर्श जीवन-यापन करो।

७–अपनी प्राचीन संस्कृति, धर्म, पूर्वपुरुषोंके गौरव, आचार-विचार तथा वेष-भूषा आदिका संरक्षण, पालन और सेवन गौरवके साथ करो।

८–खान-पानमें पवित्रता, अहिंसा, स्वास्थ्यप्रद सामग्री, सत्य कमाई तथा सात्त्विक वस्तुका ध्यान रक्खो। जूँठन, मांस, अंडे, मद्य, तामसी वस्तुएँ तथा अपवित्र पदार्थोंका खान-पान कभी मत करो।

९–पुत्र माता-पिताका, शिष्य गुरुका, पत्नी पतिका और सेवक स्वामीका सदा आदर-सत्कार, आज्ञा-पालन और सेवा करें। एवं माता-पिता पुत्रसे स्नेह करें, गुरु शिष्यका संरक्षण करें, पति पत्नीका हृदयसे आदर करे, स्वामी सेवकका पुत्रवत् पालन करें। सब अपने-अपने कर्त्तव्यपर डटे रहें।

१०–स्त्रियोंमें सबसे महत्त्वकी वस्तु है—उनका मातृत्व, उनका सतीत्व और उनका उज्ज्वल चरित्र। अतएव सदाकी भाँति हिंदू-स्त्री मातृत्व तथा सतीत्वका दृढ़ताके साथ संरक्षण करती हुई अपने चरित्रको उज्ज्वल रक्खें तथा इसमें गौरवका बोध करें।

११–कर्त्तव्यका पालन प्राणपणसे करो, अधिकारकी चिन्ता छोड़ दो। कर्त्तव्य-पालन करनेवालेका अधिकार सुरक्षित रहेगा। अर्थकी गुलामी न करके त्यागका सेवन करो, अर्थ पीछे-पीछे फिरेगा।